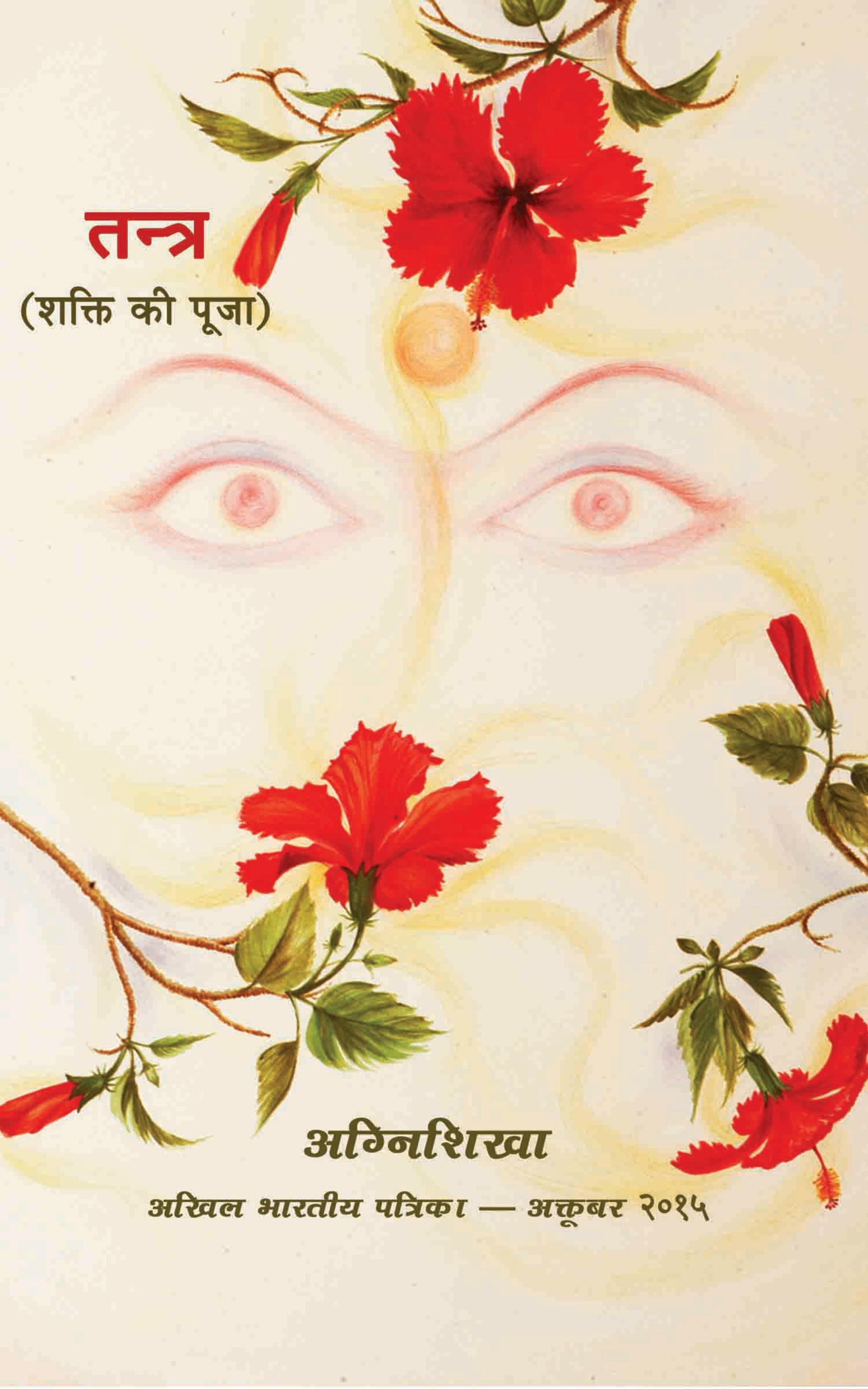

तन्त्र

(शक्ति की पूजा)

अग्निशिखा

अखिल भारतीय पत्रिका — अक्तूबर २०१५

अग्निशिखा अक्तूबर २०१५ वर्ष ४६, अंक ३, पूर्णांक ५४२

विषय-सूची

सन्देश	श्रीमां	३
(श्रीअरविन्द तथा श्रीमां के वचन)		
तन्त्र के पीछे का दर्शन और सिद्धान्त		४
कुण्डलिनी शक्ति		७
शक्ति की उपासना		१७
पूर्णयोग तथा तन्त्र		२५
अनन्त 'शक्ति' का तरीका		३०
माता के रूप में परम पुरुष		३८
'पुरोधा'		
दैनन्दिनी		४२
एक साधक के साथ पत्र-व्यवहार	'श्रीमातृवाणी' से	४६
सत्य निष्ठा	स्व. रवीन्द्र	४९
'नयी कोपलें': एक चित्रकार का कर्मस्थल	आकाश साहा	५२
बेटे के नाम चिट्ठी	वन्दना	५३

मुखपृष्ठ की पृष्ठभूमि की पेंटिंग—ऋतम उपाध्याय

मुखपृष्ठ के पुष्प का श्रीमां द्वारा दिया गया आध्यात्मिक अर्थ :

ऊर्जस्वी शक्ति

प्रगति के लिए अनिवार्य

वानस्पतिक नाम : Hibiscus rosa-sinensis

श्रीअरविन्द सोसायटी की मासिक पत्रिका

Website: www.aurosociety.org

सम्पादिका : वन्दना

प्रकाशक : प्रदीप नारंग, श्रीअरविन्द सोसायटी, पॉण्डिचेरी—६०५००२

मुद्रक : स्वाधीन चैटर्जी, श्रीअरविन्द आश्रम प्रेस, पॉण्डिचेरी

उद्‌बुध्यस्वाग्ने प्रति जागृहि

सन्देश

अगर तुम भगवान् को अविश्वास के साथ और डरते हुए बुलाते हो, अगर तुम्हारे मन में यह विचार रहता है कि मैं बुला तो रहा हूं पर न जाने भगवान् का उत्तर मिलेगा या नहीं, तो विरोधी शक्तियां, ऐसी शक्तियां जो भगवान् के काम में बाधा डालना चाहती हैं, तुम्हारे भय, शंका, अविश्वास के रास्ते तुम्हारे अन्दर घुस पड़ेंगी और तुम्हारे काम में रोड़े अटकाएंगी। इसलिए हमेशा सच्चे दिल से पूरी सच्चाई और श्रद्धा के साथ टेर लगाओ। याद रखो कि सच्चाई का कभी नाश नहीं हो सकता। जो असत्य है, जो कपटपूर्ण है उसका नाश जरूर होगा। अगर हम भगवान् के साथ हैं तो हमारी विजय जरूर होगी। चाहे कितना भी विरोध हो, चाहे कैसी भी स्थिति हो, भगवान् की जीत होगी और जरूर होगी।

अपने जीवन में बाहरी चीजों को बहुत महत्त्व न दो। ऊपर से परिस्थितियां कैसी भी हों, अन्दर की शान्ति को बनाये रखो और भगवान् की शरण में ही रहने की आदत कर लो। और सब नाते झूठे हैं, एक भगवान् का नाता ही सच्चा नाता है और जीवन में बस उसी का मूल्य है। भगवान् को पाना, उनके जैसा बनना कठिन जरूर है परन्तु सच्चाई के साथ कोशिश करते रहो, विघ्न-बाधाओं की परवाह किये बिना लगे रहो तो सफलता जरूर मिलेगी।

—श्रीमां

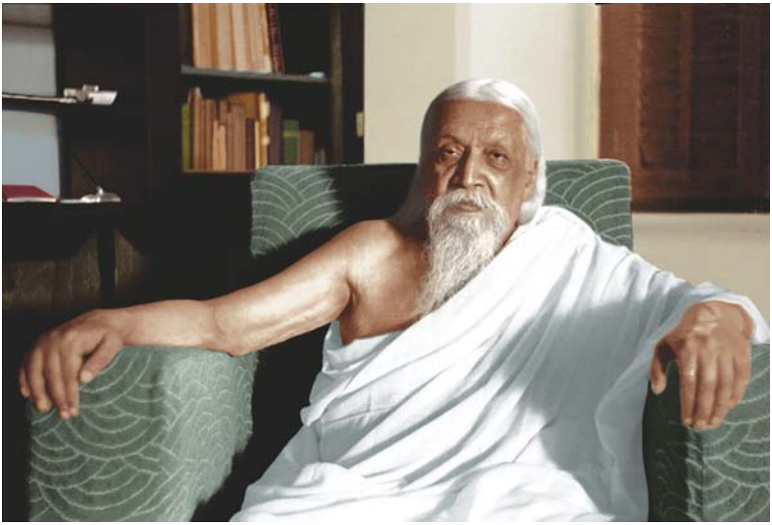

तन्त्र के पीछे का दर्शन और सिद्धान्त

तन्त्र की पृष्ठभूमि और उसका सार

भारत में एक ऐसी विलक्षण यौगिक प्रणाली का विकास हुआ है जिसका स्वभाव समन्वयात्मक है और जो प्रकृति के महान् केन्द्रीय सिद्धान्त से, उसकी महान् सक्रिय शक्ति से शुरू होती है। लेकिन यह अपने-आपमें एक अलग ही योग-प्रणाली है, दूसरी प्रणालियों का समन्वय नहीं है। यह है तन्त्र-मार्ग। जो लोग तान्त्रिक नहीं हैं वे इस मार्ग को हेय दृष्टि से देखते हैं; विशेषकर इसकी वाममार्गी पद्धतियों को, क्योंकि ये पद्धतियां पाप और पुण्य के द्वन्द्व के परे जाने से नहीं हिचकतीं, यानी ये कभी-कभी नैतिकता के परे चली जाती हैं और कामना के उपभोग के असंयत पथ पर भी बढ़ जाती हैं। यह सब होते हुए भी तान्त्रिक प्रणाली अपने मूल में महान् और शक्तिशाली प्रणाली थी। यह कुछ ऐसे विचारों पर आधारित थी जिसमें आंशिक सत्य अवश्य था। तन्त्र के दो मार्ग—दक्षिण-मार्ग तथा वाम-मार्ग—दोनों ही एक गहन अनुभव से शुरू हुए। प्राचीन प्रतीकात्मक अर्थ के अनुसार दक्षिण-मार्ग था 'ज्ञान' का और वाम था 'आनन्द' का। 'ज्ञान' के मार्ग में प्रकृति मनुष्य के अन्दर अपनी शक्तियों और सामर्थ्यों को उंडेल कर क्रिया करती है और वह विवेकशील बना रहता है जब कि वाम

अर्थात् 'आनन्द' के मार्ग में वह मनुष्य के अन्दर हर्ष उंडेल कर क्रिया करती है। ये दोनों ही मार्ग अपने मौलिक रूप में अन्य योग-प्रणालियों की तरह ही थे, लेकिन फिर इनमें कुछ विकार प्रकट हो गये; विशेषकर वाम-मार्ग के अनुगामियों में—उन्होंने 'आनन्द' को मुक्त कामना के हर्ष की ओर मोड़ दिया, अतः बाद में इनके प्रतीकों का ह्रास हो गया और इनके सिद्धान्तों में गिरावट आ गयी।

पर यदि हम यहां भी वर्तमान प्रणालियों और अभ्यासों को एक ओर रख कर केन्द्रीय सिद्धान्त की खोज करें तो हमें सबसे पहले यही पता लगेगा कि 'तन्त्र' 'योग' की वैदिक प्रणालियों से स्पष्ट रूप में भिन्न है। एक अर्थ में तो वे सब मत, जिनका हमने अब तक निरीक्षण किया है, अपने सिद्धान्त में वैदान्तिक हैं; उनकी शक्ति ज्ञान में है, उनकी प्रणाली भी ज्ञान है, यद्यपि यह सदा ही बुद्धि द्वारा प्राप्त नहीं होता, या यह उसके स्थान पर हृदय का एक ऐसा ज्ञान हो सकता है जो प्रेम और विश्वास में अभिव्यक्त होता है, या यह संकल्प में स्थित एक ऐसा ज्ञान भी हो सकता है जो कर्म द्वारा चरितार्थ होता है, पर सबमें योग का स्वामी 'पुरुष' ही है, वह एक सचेतन आत्मा है जो जानती है, निरीक्षण करती है, आकर्षित एवं शासित करती है। किन्तु तन्त्र में प्रकृति ही स्वामिनी होती है, वह 'प्रकृति-आत्मा' अर्थात् शक्ति होती है, यह वस्तुतः विश्व में कार्य करने वाला शक्तिगत संकल्प होता है। इस संकल्प के अन्तरंग रहस्यों को, इसकी प्रणाली और इसके तन्त्र को सीख कर तथा इनका प्रयोग करके ही तान्त्रिक योगी ने अपनी अनुशासन-सम्बन्धी क्रियाओं के उद्देश्यों अर्थात् स्वामित्व, पूर्णता, मुक्ति और आनन्द को प्राप्त करना चाहा था। अभिव्यक्त 'प्रकृति' और उसकी कठिनाइयों से पीछे हटने के स्थान पर उसने उनका सामना किया था, उन्हें प्राप्त एवं अधिकृत कर लिया था। किन्तु अन्त में, जैसा कि प्रकृति का स्वभाव होता है, तान्त्रिक योग अपनी जटिल यान्त्रिक क्रिया में अपने मूल सिद्धान्त को अधिकतर खो बैठा और उन सूत्रों और गुह्य यान्त्रिक प्रक्रियाओं की वस्तु बन गया जो ठीक प्रकार प्रयुक्त होने से अभी भी फलप्रद तो होती थीं, पर अपने मूल उद्देश्य की स्पष्टता से च्युत हो गयी थीं।

'योग समन्वय' पृ. ४२-४३ —श्रीअरविन्द

वेदान्त और तन्त्र : एक ही सत्य के दो पहलू

वेद और वेदान्त एकमेव परम सत्य का एक पक्ष हैं; शक्ति पर बल देने वाला तन्त्र उसका दूसरा पक्ष है; इस योग में सत्य के सभी पक्ष ग्रहण किये जाते हैं, पर उन व्यवस्थित रूपों में नहीं जो उन्हें प्राचीन समयों में दिये गये थे, बल्कि अपने सारतत्त्व के रूप में ग्रहण किये जाते हैं और उन्हें उनके पूर्णतम और उच्चतम महत्त्व तक ले जाया जाता है। परन्तु वेदान्त दिव्य ज्ञान के सिद्धान्तों और मूल तत्त्वों की चर्चा अधिक करता है और इसलिए उसके अधिकांश आध्यात्मिक ज्ञान और अनुभव को 'आर्य' पत्रिका में पूरे का पूरा ले लिया गया है। तन्त्र विधियों, प्रक्रियाओं तथा सुसंगठित शक्तियों की चर्चा अधिक करता है—ये सब चीजें, जैसी कि वे हैं, ग्रहण नहीं की जा सकीं, क्योंकि पूर्णयोग को अपनी निजी विधियां और प्रक्रियाएं विकसित करने की आवश्यकता है; परन्तु चक्रों के अन्दर से चेतना का आरोहण तथा अन्य तान्त्रिक ज्ञान उस रूपान्तर की प्रक्रिया के पीछे विद्यमान हैं जिनको मैं इतना अधिक महत्त्व प्रदान करता हूं—साथ ही यह सत्य भी विद्यमान है कि श्रीमां की शक्ति की सहायता के बिना कुछ भी सम्पन्न नहीं किया जा सकता।

SABCL खण्ड २२, पृ. ७३

खुलापन शक्ति और प्रभाव को ग्रहण करने और प्रगति के लिए उनका उपयोग करने के लिए संकल्प है; परम चेतना के साथ सम्पर्क बनाये रखने की सतत अभीप्सा है; यह श्रद्धा है कि शक्ति और चेतना हमेशा तुम्हारे साथ, तुम्हारे चारों ओर, तुम्हारे अन्दर हैं और बस तुम्हें इतना ही करना है कि उन्हें ग्रहण करने के रास्ते में किसी भी चीज को बाधक न बनने दो।

—श्रीमां

कुण्डलिनी शक्ति

कुण्डलित योग-शक्ति को जगाना

मधुर मां, यहां लिखा है : " 'योग-शक्ति' कुण्डलित या सोयी हुई रहती है..." उसे कैसे जगाया जा सकता है?

... तुम जिस समय योग करने का संकल्प करते हो उसी क्षण वह स्वाभाविक रूप से जग जाती है। अगर संकल्प सच्चा हो और तुम्हारे अन्दर अभीप्सा हो तो वह अपने-आप जाग जाती है। वास्तव में, शायद उसके जागने से ही योग करने की अभीप्सा पैदा होती है। यह सम्भव है कि यह भागवत 'कृपा' का परिणाम हो... या किसी बातचीत के बाद, या कुछ पढ़ने, किसी ऐसी चीज से जिसने अचानक तुम्हारे अन्दर—योग क्या है—यह जानने और उसका अभ्यास करने का विचार दिया या अभीप्सा दी हो। कभी-कभी किसी के साथ एक साधारण-सी बातचीत, किसी पुस्तक में पढ़ा हुआ कोई परिच्छेद 'योग-शक्ति' को जगाने के लिए पर्याप्त होता है और यह तुम्हें योग करने के लिए प्रवृत्त करता है। शुरू में तुम्हें उसका पता नहीं होता—बस, इतना लगता है कि हमारे जीवन में कुछ बदल गया है, एक नया निर्णय लिया गया है, एक नया मोड़ आया है।

मधुर मां, यह 'योग-शक्ति' क्या चीज है?

यह प्रगति की ऊर्जा है। यह वह ऊर्जा है जो तुमसे वास्तव में योग करवाती है, तुमसे सचेतन रूप से प्रगति करवाती है। यह एक सचेतन ऊर्जा है। वस्तुतः, 'योग-शक्ति' योग करने की शक्ति है।

मधुर मां, क्या नीचे से दिव्य शक्तियों को खींचना ज्यादा कठिन नहीं है?

मेरा ख्याल है कि यह बिलकुल बेकार है। कुछ लोगों का ख्याल है कि ऊर्जा के और भी भण्डार हैं—मैंने यह बहुत बार सुना है : ऊर्जा का बहुत

बड़ा भण्डार है—धरती में, और अगर वे इस ऊर्जा को अपने अन्दर खींच सकें तो वे बहुत कुछ कर सकेंगे; लेकिन वह हमेशा मिश्रित होती है।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ७, पृ. ११२-१३

हम अपनी 'योग-शक्ति' को कैसे जगा सकते हैं?

यह इस पर निर्भर करता है : जब तुम यह सोचते हो कि तुम्हारे जीवन में यही सबसे बढ़ कर महत्त्वपूर्ण चीज है। बस। कुछ लोग ध्यान में बैठते हैं, रीढ़ की हड्डी के निचले भाग पर एकाग्र होते हैं और उसे जगाने की बहुत इच्छा करते हैं, लेकिन यह काफी नहीं है। जब यह सचमुच तुम्हारे जीवन में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण चीज बन जाये, जब ऐसा लगे कि बाकी सबमें कोई रस नहीं रहा, कोई रुचि नहीं रही, कोई महत्त्व नहीं रहा, जब तुम्हें अन्दर से लगे कि तुम इसी के लिए पैदा हुए हो, तुम केवल इसीलिए धरती पर हो, और यही एकमात्र चीज है जिसका महत्त्व है, तो इतना पर्याप्त है। तुम विभिन्न चक्रों पर एकाग्र हो सकते हो; लेकिन कभी-कभी तुम लम्बे अरसे तक, बड़े प्रयास के साथ एकाग्र होने पर भी कोई परिणाम नहीं पाते। और तब एक दिन कोई चीज तुम्हें झकझोर देती है, तुम्हें लगता है कि तुम्हारे पैरों तले की जमीन खिसक रही है, तुम्हें किसी चीज से चिपकना चाहिये; तब तुम अपने अन्दर भगवान् के साथ एकत्व के विचार से चिपट जाते हो, भागवत 'उपस्थिति' के विचार, चेतना के रूपान्तर के विचार से चिपट जाते हो, और तुम अभीप्सा करते हो, तुम चाहते हो, तुम अपने संवेदनों, गतिविधियों और आवेगों को इसके चारों ओर व्यवस्थित करने की कोशिश करते हो। और परिणाम आ जाता है।

कुछ लोगों ने नाना प्रकार के उपायों की सलाह दी है; शायद ये ऐसे उपाय थे जो उनके मामले में सफल हुए थे; लेकिन सच बात तो यह है कि तुम्हें अपना उपाय अपने-आप खोजना चाहिये, काम कर लेने पर ही तुम्हें पता लगता है कि उसे कैसे किया जाये, उससे पहले नहीं।

अगर तुम उसे पहले से जानो तो तुम एक मानसिक रचना खड़ी कर लेते हो और तब यह खतरा रहता है कि तुम अधिकतर उसी मानसिक रचना में, जो एक भ्रान्ति है, रहते रहोगे; क्योंकि जब मन कोई विशेष

परिस्थितियां बनाता है और जब वे चरितार्थ होती हैं तो अधिक सम्भावना यही होती है कि वे शुद्ध रूप से मानसिक रचनाएं होंगी जो स्वयं अनुभूति न होकर उसका बिम्ब होंगी। तो मेरा ख्याल है कि इन सब आध्यात्मिक अनुभूतियों के बारे में जानने से पहले उन्हें पाने में ही बुद्धिमत्ता है। अगर तुम उन्हें जानते हो तो उनकी नकल करते हो, तुम अनुभूतियों को पाते नहीं, यह कल्पना करते हो कि तुम उन्हें पा रहे हो; जब कि अगर तुम कुछ भी नहीं जानते—तुम नहीं जानते कि चीजें कैसी हैं और कैसी होनी चाहियें, क्या होना चाहिये और वह कैसे होगा—अगर तुम्हें इसके बारे में कुछ भी नहीं मालूम, तो बिलकुल चुपचाप रहने से और अपनी सत्ता के अन्दर एक तरह की आन्तरिक छंटाई करके तुम्हें अचानक एक अनुभूति हो सकती है, और बाद में तुम्हें पता लगता है कि तुम्हें क्या प्राप्त हुआ। वह खतम हो जाती है, और उसके हो जाने के बाद तुम्हें पता लगता है कि इसे कैसे किया जाता है—बाद में। इस तरह यह निश्चित होती है।

स्पष्ट है कि तुम अपनी कल्पना का उपयोग कर सकते हो, कुण्डलिनी की कल्पना करो और उसे ऊपर की ओर खींचने की कोशिश करो। लेकिन साथ ही तुम अपने-आपको ऐसी मनगढ़न्त कहानियां भी सुना सकते हो। मेरे सामने लोगों के ऐसे बहुत सारे उदाहरण हैं जो अपनी अनुभूतियों का ठीक वैसा ही वर्णन करते थे जैसी वे किताब में लिखी हैं, वे सभी शब्दों से परिचित थे और सभी ब्योरों का वर्णन करते थे, तब मैंने यूं ही, उनसे एक छोटा-सा प्रश्न कर लिया : अगर उन्हें यह अनुभूति हुई है तो उन्हें अमुक चीज का पता होना चाहिये या उसका अनुभव होना चाहिये, और क्योंकि वह किताबों में नहीं था, वे उत्तर न दे सके।

मधुर मां, सहस्रदल-कमल का क्या अर्थ है?

उसका इसी तरह वर्णन किया जाता है, क्योंकि उसमें एक केन्द्र है जो बहुत, बहुत जटिल है। मेरा ख्याल है उसका मतलब है विचार की अनगिनत शक्तियां, यह सभी रूपों में ज्ञान की बहुलता है। यही होना चाहिये। लो, यह एक और उदाहरण है : जिन्होंने पढ़ा है, अध्ययन किया है, और बाद में अनुभूति प्राप्त की है, हां तो, वे उसका हमेशा इसी तरह वर्णन करते

हैं, वे पुस्तकों में से शब्द चुन लेते हैं और पुस्तकों में दिये हुए कमलों के वर्णन सुनाते हैं; परन्तु जिन्हें पढ़े बिना या पहले से सीखे बिना सहज अनुभूति होती है, वे मानों वैयक्तिक सच्चाई के साथ, एकदम सजीव वर्णन करते हैं। हर एक अनुभूति को अपने ही ढंग से लेता है। जब ये चक्र खुलते हैं... यह एक तथ्य है कि चक्र हैं, और यह भी एक तथ्य है कि वे खुलते हैं, और यह भी एक तथ्य है कि इससे चेतना और ऊर्जा की समस्त क्रियाविधि में बहुत परिवर्तन आ जाता है, लेकिन उसका वर्णन, अगर वह सच्चा और सहज हो, तो हर एक के लिए अलग होता है। तुम्हें किसी चीज के साथ साम्यता का बोध हो सकता है, लेकिन जो होता है उसका सुनिश्चित और यथार्थ वर्णन हमेशा मन का हस्तक्षेप होता है।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ७, पृ. २३२-३४

जाग्रत् होने की सच्ची अनुभूति

यह तथ्य बहुत वास्तविक और ठोस होता है, इसके अनुभवों में भौतिक तथ्य की वास्तविकता और तीव्रता तक होती है। लेकिन हर आदमी उसका वर्णन ऐसे रूप में करता है जो उसके लिए विशेष होता है, लेकिन जैसा मैंने कहा, अगर उसने पढ़ा और अध्ययन किया हो, तो उसका दिमाग किताबों में लिखी हुई सब प्रकार की चीजों से भरा होता है; तब उसने जो कुछ पढ़ा है वही अपने-आप उसकी अनुभूति को रूप देता है, और इससे उसकी वह सहजता कुछ कम हो जाती है जो उस पर सच्चे और निष्कपट होने की मोहर लगाती है; वह एक मानसिक रचना बन जाती है। अगर तुमने पढ़ा है और बहुत पढ़ा है कि वह कुण्डलित सांप की तरह है, तो, स्वभावतः, जब तुम एकाग्र होकर उसे जगाने की कोशिश करते हो, तो तुम्हें कुण्डली मारे सांप दिखायी देता है, क्योंकि तुम उसके बारे में इसी तरह सोचते हो। अगर तुम्हें सहस्रदल-कमल के बारे में बताया गया है, तो तुम सहस्रदल-कमल देखते हो। परन्तु यह स्वयं अनुभूति के तथ्य पर एक मानसिक अध्यारोपण है। लेकिन एक ऐसी चीज की अनुभूति जो अनगिनत है, जो एक ही साथ एक और अनगिनत है, और ऐसा लगना कि कोई चीज खुल रही है, जाग रही है, स्पन्दित होना शुरू कर रही है, जो शक्तियों को प्रत्युत्तर देती और तुम्हें प्रकाश की, विवेक की, उच्चतर

क्षेत्रों की ओर खुलने की तीव्रता प्रदान करती है, यह... इस अनुभूति का सार-तत्त्व है। फिर भी जब तुम किताबों में पाये जाने वाले रूपकों के द्वारा वर्णन करने लगते हो, तो ऐसा लगता है मानों तुम अचानक उसे बनावटी—या यूं कहें, पथराया हुआ—या कृत्रिम या कपटपूर्ण तक बना देते हो।...

तो मां, इसका यह अर्थ हुआ कि न पढ़ना ज्यादा अच्छा है?

बशर्ते कि तुम्हारे अन्दर सचमुच अभीप्सा का उत्साह हो। अगर तुम इसी के लिए, योग के लिए जन्मे हो, और यही वह चीज है जो तुम्हारे सारे अस्तित्व पर छायी हुई है, तुम यह अनुभव करते हो कि हां, कुछ जानने से पहले तुम्हें एक ऐसी चीज खोजने की जरूरत है जो तुम्हारे अन्दर है, तो कभी-कभी एक शब्द ही काफी होता है, एक बातचीत, जो बस तुम्हें दिशा देती है—इतना काफी होता है। लेकिन जो लोग खोज रहे हैं, जो टटोल रहे हैं, जिन्हें पूरा विश्वास नहीं है, जो इस ओर और उस ओर खिंचते हैं, जिनके जीवन में अनेक शौक होते हैं, जो स्थिर नहीं हैं, उपलब्धि के लिए संकल्प में स्थिर नहीं हैं, उनके लिए पढ़ना बहुत अच्छा है, क्योंकि यह उन्हें विषय के सम्पर्क में लाता है, उनमें कुछ रुचि जगाता है।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ७, पृ. २३४-३५

योग में चक्रों का सन्दर्भ

हमारे योग में प्रत्येक चक्र या केन्द्र का एक निश्चित और व्यापक कार्य-व्यापार होता है, वे अपनी विशेष शक्तियों के द्वारा क्रिया करते हैं। 'मूलाधार'-केन्द्र भौतिक से लेकर नीचे अवचेतना तक क्रिया करता है; पेट यानी 'स्वाधिष्ठान'-केन्द्र निम्नतर प्राण पर शासन करता है; नाभि-केन्द्र—'नाभिपद्म' या 'मणिपुर'—बृहत्तर प्राण पर; हृदय-केन्द्र—'हृत्पद्म' या 'अनाहत'—भावुक प्रकृति पर; कण्ठ-केन्द्र—'विशुद्ध'—अभिव्यञ्जनात्मक तथा बहिर्मुख मन को नियन्त्रण में रखता है; भ्रूमध्य-केन्द्र—'आज्ञाचक्र'—ऊर्जस्वी मन, संकल्प, अन्तर्दर्शन तथा मानसिक रूपों पर शासन करता है; ऊपर का 'सहस्रदल-कमल' उच्चतर मननशील मन पर क्रिया करता

है, वह उच्चतर प्रोद्भासित मन को आश्रय देता है और अपनी उच्चतम स्थिति में अन्तर्भास की ओर खुल जाता है जिसके द्वारा अधिमानस उतर कर अन्य केन्द्रों के साथ सीधा सम्पर्क स्थापित कर सकता है।

*

योग के सन्दर्भ में ही हम चक्रों के खुलने की चर्चा करते हैं। जन-साधारण में ये चक्र उद्घाटित नहीं होते। केवल तभी जब लोग साधना करते हैं कि चक्र खुलते हैं। क्योंकि चक्र आन्तरिक चेतना के केन्द्र हैं और मूलभूत रूप से सूक्ष्म शरीर से सम्बन्ध रखते हैं। सामान्य लोगों में बाहरी चेतना इतनी सक्रिय होती है कि सूक्ष्म शरीर के साथ उनका सम्बन्ध न के बराबर होता है।

*

चेतना के केन्द्रों के खुलने से ही यौगिक या आन्तरिक चेतना विकसित होती है—अन्यथा तुम बाहरी चेतना से ही बंधे रहते हो।

*

साधना के दौरान व्यक्ति चैत्य-केन्द्र या अन्य किसी भी केन्द्र से गुजरता नहीं है बल्कि ये सभी केन्द्र या चक्र साधना के दबाव से खुलते हैं। तुम कह सकते हो कि 'शक्ति' किसी चक्र में ऊपर से उतरती या नीचे से चढ़ती है।

*

रीढ़ की हड्डी सभी चक्रों को सहारा देती है और तान्त्रिक साधना में वहीं से कुण्डलिनी जाग्रत् होती है।

*

कुण्डलिनी है नाभि-केन्द्र की शक्ति जो नीचे से चक्र में घूमती, स्पन्दित होती हुई ऊपर ब्रह्मरन्ध्र की ओर उठती है; वैसे हमेशा इसे ऐसे भी अनुभव नहीं किया जाता मानों यह गोल-गोल घूम कर ऊपर आ रही हो, बल्कि

कभी-कभी व्यक्ति को ऐसा लगता है कि किसी शक्ति की विद्युत् लहरें ऊपर उठ रही हैं या फिर उसे केवल चेतना के ऊपर उठने की क्रिया का अनुभव होता है। लेकिन सभी मामलों में यह चक्रों में बन्द यौगिक चेतना की मुक्ति है जो ऊपर की 'भागवत चेतना' से भेंट करने के लिए उठान भरती है। नीचे का यह उठान और उसी के सदृश ऊपर का अवतरण ही यौगिक अनुभूतियों तथा उपलब्धियों को सम्भव बनाता है।

*

मूलाधार में सोयी हुई यौगिक शक्ति है कुण्डलिनी जो दूसरे चक्रों में सामान्य चेतना से ढकी होती है।

जब वह मुक्त हो जाती है तो ऊपर ब्रह्म-चेतना तक पहुंचने के लिए रास्ते में अन्य सभी चक्रों में से होकर गुजरती है।

*

सिर के ऊपर कोई कुण्डलिनी शक्ति नहीं है। सिर के ऊपर हैं—वैश्व या 'भागवत चेतना' तथा 'शक्ति'। कुण्डलिनी है, चक्रों में प्रच्छन्न, सोयी हुई शक्ति।

CWSA खण्ड २९, पृ. ४६०-६१

*

तन्त्र में चक्र खुल जाते हैं और एक विशेष प्रक्रिया द्वारा कुण्डलिनी को जगाया जाता है, उसके ऊपर उठने की क्रिया का अनुभव रीढ़ की हड्डी में होता है। ऊपर की शक्ति का दबाव उसे जाग्रत् कर देता और चक्रों को खोल देता है। तब चेतना ऊपर उठती चली जाती है जब तक कि ऊपर की उच्चतर चेतना से नहीं मिल जाती। यह चीज तब तक दोहरायी जाती है (कभी-कभी अवतरण का भी अनुभव होता है) जब तक कि सभी चक्र खुल नहीं जाते और चेतना शरीर के परे नहीं चली जाती। बाद के स्तर पर यह शक्ति ऊपर ही बनी रहती है और वैश्व चेतना तथा वैश्व स्व में फैल जाती है। यही सामान्य प्रक्रिया है, लेकिन कभी-कभी प्रक्रिया अधिक तेज होती है और ऊपर अचानक लेकिन सुनिश्चित उद्घाटन हो जाता है।

सहस्रदल या शीर्ष-चक्र

सहस्रदल-कमल सिर के ऊपर होता है। यह सातवां और उच्चतम चक्र है।

सामान्यतया जो लोग केवल शरीर के अन्दर के चक्रों को मानते हैं वे सहस्रदल चक्र की गिनती नहीं करते।

*

निश्चित रूप से, सहस्रदल-कमल से ही उच्चतर अन्तर्भास, प्रदीप्त मन और अधिमानस—इन सभी की किरणें गुजरती हैं।

*

सहस्रदल चक्र सामान्य मन से लेकर अतिमानस तक के सभी केन्द्रों पर प्रभुत्व रखता है—अतः, अनिवार्यतः इसके उद्घाटन में काफी समय लगता है।

और स्वयं उद्घाटन बस एक सम्पर्क जोड़ता है—उस चक्र में बने रहने के लिए व्यक्ति को मन से परे जाना होगा और प्रमुख रूप से आध्यात्मिकता में निवास करने के योग्य होना होगा।

*

चूंकि अतिमानस भौतिक शरीर में अवस्थित नहीं है इसलिए शरीर में इसका कोई पृथक् केन्द्र नहीं है; लेकिन जो कुछ मन के ऊपर से आता है वह अपने अवतरण के लिए सहस्रदल-कमल को ही माध्यम बनाता है, इसलिए वहां अतिमानसिकता की एक किरण प्रवेश कर जाती है।

*

अगर ललाट-केन्द्र खुल जाये तो यह निश्चित है कि सहस्रदल-कमल पर्याप्त रूप से उद्घाटित हो गया है ताकि वह अपने ऊपर स्थित उच्चतर शक्ति के उतरने के लिए माध्यम बन सके। रही बात चैत्य की, तो वह दूसरा ही मामला है—चैत्य सत्ता सभी चक्रों के पीछे खड़ी रहती है और वह कब सामने आयेगी यह व्यक्ति-व्यक्ति के विकास पर निर्भर करता है,

किसी नियम पर नहीं। यह जरूरी नहीं है कि किसी केन्द्र के खुलने पर चैत्य सत्ता सामने प्रकट हो जाये। हमारे योग में सामान्यतः ऊपर से नीचे कार्य होता है। हां, साधना के प्रारम्भिक स्तरों पर कुछ बदलाव भी हो सकते हैं। उदाहरण के तौर पर, हो सकता है कि किसी में पहले हृदय-केन्द्र का आंशिक उद्‌घाटन हो। हो सकता है कि किसी और में पहले प्राणिक-केन्द्र सक्रिय हो उठे, लेकिन इस तरह के अ ृंखलित उद्‌घाटन से बहुधा व्यक्ति को बहुत संघर्ष और कठिनाई में से गुजरना पड़ता है।

*

चैत्य सत्ता हृदय-केन्द्र के पीछे स्थित होती है—आंखों के बीच का केन्द्र आन्तरिक (गुह्य) विचार, संकल्प और अन्तर्दर्शन का केन्द्र है। इस आन्तरिक या गुह्य अन्तर्दर्शन को ही सामान्य लोग चैत्य अन्तर्दर्शन के नाम से पुकारते हैं।

*

तीसरी आंख ललाट के बीच में खुलती है—यह गुह्य अन्तर्दर्शन तथा गुह्य शक्ति का प्रतीक है जो अन्तर्दर्शन को लाती है। इसका सम्बन्ध आज्ञाचक्र से होता है।

CWSA खण्ड २८, पृ. २३०-३९

जीवन के सात केन्द्र

१. सहस्रदल-कमल सिर के ऊपर है और उसका आधार मस्तिष्क में है। यह 'प्राण-मन' में अतिमानस का प्रतीक और प्रोद्‌भासित मन का प्रवर्तक केन्द्र है।

२. ललाट के मध्य, भौंहों के बीच का केन्द्र 'संकल्प' का, अन्तर्दर्शन, आन्तरिक मानसिक रूप, सक्रिय तथा ऊर्जस्वी 'मन' का प्रतीक है।

३. कण्ठ-केन्द्र वाणी, बाहरी मन, सभी बाहरी अभिव्यक्ति तथा रूप और आकार का प्रतीक है।

४. हृदय-केन्द्र बाहरी रूप में भावुक मन, प्राणिक मन तथा आन्तरिक रूप में हृदय और चैत्य-केन्द्र का प्रतीक है।

५. नाभि-केन्द्र बृहत्तर प्राण, जीवन-ऊर्जा का प्रतीक है।

६. नाभि तथा मूलाधार के बीच का केन्द्र निम्न प्राण का प्रतीक है; यह ऊपर के बाकी सभी केन्द्रों को भौतिक से जोड़ता है।

७. अन्तिम केन्द्र है मूलाधार। यह प्राण का भौतिक आधार है।

इसके नीचे सब कुछ अवचेतन-भौतिक है।

CWSA खण्ड ११, पृ. १३४३

चक्र तथा केन्द्रों का कार्य

केन्द्रों अथवा चक्रों की संख्या सात है—

१. ललाट के ऊपर—सहस्रदल-कमल।

२. ललाट के मध्य—आज्ञा-चक्र (संकल्प, अन्तर्दर्शन, ऊर्जस्वी विचार)।

३. कण्ठ-चक्र—बहिर्मुख मन।

४. हृदय-पद्म—भावुक केन्द्र। इसके पीछे चैत्य है।

५. नाभि—उच्चतर प्राण (यथार्थ)।

६. नाभि के नीचे—निम्नतर प्राण।

७. मूलाधार—भौतिक।

ये सभी चक्र शरीर के बीच में हैं; कहा जाता है कि ये रीढ़ की हड्डी से जुड़े होते हैं; लेकिन वस्तुतः ये सभी चीजें सूक्ष्म-शरीर या देह में होती हैं, यद्यपि जब चेतना जाग्रत् हो तो उनकी क्रियाओं से ऐसा अनुभव होता है मानों ये सभी क्रियाएं भौतिक शरीर में हो रही हैं।

CWSA खण्ड २८, पृ. २२९

पहले अपने-आपको जगाना होगा,
तभी विजय मिल सकती है।

—श्रीमां

शक्ति की उपासना

शक्ति की शर्तें

यह ध्यान देने की बात है कि जब तक चित्त में अशुद्धि बनी रहती है, विचार में अहंकार और सिद्धि के उपयोग के लिए कामना का आधिपत्य बना रहता है तब तक कोई भी सिद्धि पूरी तरह से या खुल कर क्रिया नहीं कर सकती। ऐसी परिस्थितियों में शक्ति बीच-बीच में क्रिया कर सकती है, अतः उसका प्रभाव भी अनियमित होता है; यानी ऐसी शक्ति का अपने-आपमें कोई विशेष महत्त्व नहीं होता, यह बस इसलिए उपयोगी होती है कि मन को प्रशिक्षित कर सके कि वह अपने पुराने संस्कारों और अभ्यासी गतियों से पिण्ड छुड़ा ले और विज्ञानमयी शक्ति की क्रियाओं को स्वीकार कर ले; या फिर साधक कुछ निश्चित तान्त्रिक क्रियाओं द्वारा कुछ सीमित शक्तियों का नियमित तथा प्रभावी उपयोग कर सकता है। पूर्णयोग के साधकों को इस दूसरी चीज से पूरी तरह बचना चाहिये।

CWSA खण्ड १०, पृ. २१-२२

ज्ञान की शर्तें

यह भी ध्यान देने-योग्य बात है कि पूर्ण ज्ञान और त्रिकालदृष्टि को पाना तभी सम्भव हो सकता है जब अन्तःकरण की पूर्ण शुद्धि हो, विशेष रूप से कामना का बहिष्कार हो, बुद्धि में विशुद्धि हो, मनस् की पूर्ण वश्यता और अन्त में, क्रिया में विज्ञान की शक्तियों की पूर्णता हो। यह बहुत सम्भव है कि जो योगी या साधक नहीं हैं उनमें से कई इन शक्तियों की अपूर्ण या अनियमित क्रिया द्वारा सञ्चालित और उससे अभिभूत हो धुंधलके में ही बने रहें।

CWSA खण्ड ११, पृ. २२

तन्त्र में साधना का उचित तरीका

बहुधा साधना के उचित तरीके को बहुत लोग नहीं अपनाते और तुमने भी वही किया। लोग शरीर और प्राण से शुरू करके चित्त और मनस् में से होकर बुद्धि और इच्छा-शक्ति पर आकर समाप्त करते हैं।

सच्चा तरीका है—इच्छा-शक्ति से शुरू करके शरीर पर समाप्त करना। अगर व्यक्ति इच्छा-शक्ति से आरम्भ करे तो आसन, प्राणायाम, कुम्भक, चित्तशुद्धि या किसी भी अन्य प्राथमिक तैयारी की आवश्यकता नहीं होती। जहां तक योग का सम्बन्ध है, श्री रामकृष्ण यही दर्शाने के लिए आये। उन्होंने कहा था—"पहले शक्ति की उपासना करो। पहले शक्ति को पाओ और वह तुम्हें सत् प्रदान करेगी।" योगी के लिए संकल्प और शक्ति को पाना ही सबसे पहले आवश्यक साधन हैं। इसीलिए वे हमेशा कहा करते थे—"याद रखो कि तुम ब्रह्म हो," और उन्होंने यही प्रमुख सन्देश स्वामी विवेकानन्द को दिया। तुम ईश्वर हो। अगर तुम चाहो तो तुम शुद्ध, सिद्ध और बाकी सब कुछ हो सकते हो, या अगर तुम चुनो तो तुम ठीक इसके विपरीत हो सकते हो। पहली आवश्यकता है, अपने-आप पर विश्वास करना, दूसरी है, भगवान् पर और तीसरी है, काली पर विश्वास करना; क्योंकि ये तीनों चीजें संसार की रचना करती हैं। सबसे पहले इच्छा-शक्ति, संकल्प को प्रशिक्षित-विकसित करो, 'इच्छा-शक्ति' के द्वारा 'ज्ञान' का प्रशिक्षण पाओ, 'ज्ञान' के द्वारा चित्त को पवित्र करो, प्राण को नियन्त्रित करो और मनस् को शान्त बनाओ। इन सभी माध्यमों द्वारा शरीर को अमर बना लो। यही सच्चा योग है, महापन्थ है, यही सच्चा और एकमात्र तन्त्र है। वेदान्त बुद्धि द्वारा आरम्भ करता है, जब कि तन्त्र शक्ति द्वारा। CWSA खण्ड ११, पृ. १३७१

शक्ति तुम्हारे अन्दर ही है

प्रश्न है, आरम्भ कैसे किया जाये? शक्ति तुम्हारे अन्दर ही है। उसे कार्य करने दो और उचित मनोभाव अपना कर उसके कार्य में सहयोग दो। तुम्हीं साक्षी, अनुमन्ता, भोक्ता और भर्ता हो। अनुमन्ता बन कर आदेश दो, साक्षी बन कर परिणाम को सम्पादित होते हुए देखो, भोक्ता बन कर परिणाम का रस लो और भर्ता बन कर आधार को सुरक्षित बनाये रखने में शक्ति की सहायता करो। तामसिक उदासीनता या राजसिक विद्रोह द्वारा आधार को नष्ट न होने दो। इस बात के बारे में निश्चित रहो कि तुम्हारी 'इच्छा-शक्ति' कभी असफल नहीं हो सकती। तुम्हीं 'ज्ञाता' हो : वह सारा का सारा ज्ञान हस्तगत कर लो जो तुम्हें दिया जाता है। मैंने यहां जिस

मनोभाव का उल्लेख किया है उसे स्वीकार करके साधना की तथा जीवन की प्रत्येक व्यक्तिगत क्रिया में लागू करो। तुम्हें और कुछ नहीं करना है। बाकी सब कुछ काली कर देंगी। परेशान मत होओ, विक्षुब्ध न होओ, जल्दबाजी में न रहो, तुम्हारे सम्मुख सारी अनन्तता फैली हुई है, जल्दबाजी क्यों की जाये? केवल, न तो तामसिक बनो, न ही अपना समय व्यर्थ बरबाद करो।

CWSA खण्ड ११, पृ. १३७२

सूक्ष्म तथा सूक्ष्म-शरीर

आज मैं 'शक्ति' या 'संकल्प-शक्ति' के बारे में कहूंगा क्योंकि यही योग का आधार है। सिर के शीर्ष के ठीक ऊपर सहस्त्रदल में प्रतिष्ठित होती है 'शक्ति' और अपने उस आसन पर विराजमान वह क्रिया करती है। उसके नीचे, मस्तिष्क के शीर्ष पर होती है उच्चतर बुद्धि और उसके नीचे, मस्तिष्क के मध्य-स्तर पर होती है तर्कबुद्धि या निम्नतर बुद्धि; उसके नीचे, मस्तिष्क के एकदम निचले स्तर पर है मनस् के साथ सम्पर्क साधने वाला अवयव। हम इसको समझ कह सकते हैं। ज्ञान, तर्कशास्त्र और समझ—ये मस्तिष्क के तीन हिस्से हैं। ये सूक्ष्म-शरीर में कार्य करते हैं, लेकिन ये मानसिक मस्तिष्क के अनुरूप हिस्से के साथ जुड़े रहते हैं। छाती में, हृदय के ठीक ऊपर मनस् है—यह अपनी पांच अधीनस्थ इन्द्रियों के साथ संवेदनों का अंग है। मनस् के नीचे, हृदय और नाभि के बीच में चित्त स्थित है। वहां से ऊपर नाभि तक और नीचे चैत्य या सूक्ष्म-प्राण है। ये सभी सूक्ष्म-देह में हैं, लेकिन इस बिन्दु पर स्थूल-देह से जुड़े रहते हैं। स्वयं स्थूल-देह में दो चीजें स्थित हैं—भौतिक प्राण या स्नायविक तन्त्र तथा अन्नम् या भौतिक शरीर।

CWSA खण्ड ११, पृ. १३७२-७३

इच्छा-शक्ति ही शरीर का 'ईश' है

हम कह सकते हैं कि इच्छा-शक्ति या संकल्प हमारी वह इन्द्रिय है जो हमारे शरीर के ईश अथवा यूं कहें कि शरीर के जीवन्त स्वामी का प्रतिनिधित्व करती है, उसका प्रतीक है। वह इच्छा-शक्ति अथवा ईश बुद्धि

के द्वारा विचार और ज्ञान पर, मनस् के द्वारा संवेदनाओं पर, चित्त के द्वारा मनोभावों पर क्रिया करता और प्राण के द्वारा उपभोग करता है। जब वह पूर्ण रूप से क्रिया करता है यानी, हर स्तर की इन्द्रिय के भरपूर सामर्थ्य के साथ कार्य करता है तब शक्ति का कार्य पूर्ण तथा अचूक होता है। वस्तुतः दुर्बलता, भ्रान्ति और असफलता के दो कारण होते हैं। पहला है, इन्द्रियों की क्रियाओं की अस्त-व्यस्तता। अगर प्राण संवेदनों, भावनाओं और विचारों में हस्तक्षेप करे तो मनुष्य अनीश बन जाता है, प्राण का, यानी कामनाओं का दास बन जाता है। अगर चित्त संवेदना और विचार में हस्तक्षेप करे तो भावनाएं संवेदनाओं और विचारों को झुठला देती हैं। उदाहरण के लिए, अगर प्रेम बुद्धि में हस्तक्षेप करे तो मनुष्य जिससे प्रेम करता है उसकी दुर्बलताओं के प्रति अन्धा हो जाता है, जहां तक प्रेमास्पद का सम्बन्ध होता है, वह उचित और अनुचित, कर्तव्य और अकर्तव्य के बीच भेद करने में असमर्थ हो जाता है। वह न्यूनाधिक रूप से भावनाओं, प्रेम, क्रोध, ईर्ष्या, दया, प्रतिशोध इत्यादि का दास बन जाता है। उसी तरह, अगर मनस् तर्कबुद्धि में हस्तक्षेप करे तो मनुष्य अपनी संवेदनाओं को विचार और सच्चा तर्क मान बैठता है; और अगर तर्कबुद्धि, कल्पना, स्मृति और युक्ति ज्ञान में हस्तक्षेप करें तो मनुष्य सम्भावनाओं के ऐसे चक्कर में फंस जाता है जो कभी रुकता ही नहीं। अन्त में, अगर बुद्धि भी इच्छा-शक्ति या संकल्प में हस्तक्षेप करे तो मनुष्य सर्वशक्तिमान् प्रभु के निकटतर जाने के बजाय अपने सीमित ज्ञान की चहारदीवारी में कैद हो जाता है। संक्षेप में, अगर किसी मशीन या यन्त्र का उपयोग किसी ऐसे काम के लिए किया जाये जिसके लिए वह अनुपयुक्त है, जिसके लिए वह यन्त्र बना ही नहीं है, तो वह यन्त्र उस कार्य को कर ही नहीं पायेगा, कोशिश करेगा तो बहुत ही बुरी तरह करेगा। तब धर्म-संकर उत्पन्न होता है। मैंने अब तक मनुष्य के ज्ञान प्राप्त करने से पहले की सामान्य अवस्था का वर्णन किया है। एक बार धर्म-संकर उत्पन्न हो जाये तो क्रिया में अस्त-व्यस्तता आ जाती है, सञ्चालन बुरा हो जाता है और सब कुछ असमर्थता और अज्ञान से भर जाता है। हमारे अन्दर का ईश—सच्चा सञ्चालक—उन निचले अफसरों के हाथों कठपुतली बन कर रह जाता है जिनमें से हर एक अपने स्वार्थपूर्ण उद्देश्यों को पाने के लिए कार्य करता

है, एक-दूसरे के मार्ग में हस्तक्षेप करता और रोड़े अटकाता है, प्रत्येक अपने लाभ के लिए झूठ का सहारा लेता है और ईश—प्रभु—को हानि पहुंचाता है। तब वह ईश ईश नहीं रह पाता बल्कि अनीश बन जाता है, अपने दासों के हाथ की कठपुतली बन कर रह जाता है।

वह ईश इस सबकी अनुमति क्यों देता है? 'अज्ञानम्' के कारण। उसे पता नहीं चलता, उसकी समझ में नहीं आता कि उसके अधीनस्थ मन्त्री और अफसर और उनसे जुड़े हुए अनेकों पिछलग्गू उसके साथ क्या कर रहे हैं। यह 'अज्ञानम्' क्या है? यह है शरीरस्थ ईश की स्वयं अपने स्वभाव, अपने पद और सामर्थ्य को समझने की अक्षमता। कारण, वह अपने एक बहुत ही छोटे-से हिस्से—शरीर—में बहुत अधिक दिलचस्पी लेने लगा। उसने सोचा, "यही मेरा राज्य है।" वह अपनी ही शारीरिक गतियों का यन्त्र बन गया। अतः उसने अपने-आपको स्नायविक, संवेदनात्मक, भावनात्मक और मानसिक स्तरों से एक कर लिया। वह ईश यह भूल गया कि वह इन सबसे अलग है, इनसे कहीं ज्यादा महान् और बलवान् है। उसे अब करना यह है कि अपनी शक्ति की बागडोर एक बार फिर अपने हाथ में ले ले, यह याद करे कि वह ईश्वर है, राजा है, स्वामी है, स्वयं 'प्रभु' है। इसको स्मृति में ले आये कि वह सर्व-शक्तिमान् है। उसके पास एक सशक्त मन्त्री है—वह है 'संकल्प', यानी इच्छा-शक्ति।
CWSA खण्ड ११, पृ. १३७३-७४

इच्छा-शक्ति की तपस्या

ईश अपनी इच्छा-शक्ति को सहारा दे और वह इच्छा-शक्ति शरीर-रूपी सरकार और उसके अधीनस्थ अफसरों को अपना-अपना कर्तव्य अच्छी तरह से निबाहने को बाध्य करे। हां, सबको एक साथ नहीं। उसमें समय लगेगा। सभी अफसर अव्यवस्थित कर्म और कुशासन के इतने आदी हो गये हैं कि पहले पहल वे सुशासन के लिए इच्छुक ही नहीं होंगे, और दूसरा, अगर वे करना भी चाहेंगे तो इसे करना उनको मुश्किल लगेगा। उन्हें तो यह भी पता न चलेगा कि वे शुरू कहां से करें! उदाहरण के लिए, जब तुम अपनी इच्छा-शक्ति का उपयोग करना शुरू करोगे तो क्या होगा? पहले तुम प्राण के द्वारा—कामना, इच्छा, आशा के द्वारा उसका

उपयोग करोगे, या चित्त के द्वारा—भावना, उमंग और प्रत्याशा के द्वारा उसका उपयोग करोगे, या फिर मनस् के द्वारा—चेष्टा, संघर्ष, प्रयास के द्वारा उसका उपयोग करोगे, मानों तुम जिस चीज पर नियन्त्रण पाना चाहते हो उसके साथ भौतिक रूप से हाथापाई कर रहे हो, या फिर तुम बुद्धि के द्वारा उसका उपयोग करोगे; जिस विषय में तुम्हें रस हो उस पर जोर देते हुए यह सोचोगे, "यह होना चाहिये", "वह होना चाहिये" इत्यादि। 'संकल्प' की शक्ति को पाने के लिए योगी इन सभी तरीकों को अपनाते हैं। हठयोगी प्राण और शरीर का प्रयोग करते हैं, राजयोगी हृदय, मनस् तथा बुद्धि का, लेकिन इनमें से कोई भी तरीका उत्तम नहीं है। यहां तक कि अन्तिम तरीका भी दूसरे दरजे का है और हृदय, मनस् और बुद्धि का साथ होने पर भी संघर्ष, असफलता और बहुधा हतोत्साह पीछे लगे रहते हैं। 'इच्छा-शक्ति' अपनी क्रिया में तभी पूर्ण होती है जब वह इनमें से किसी के साथ नहीं बंधी रहती, जब वह सीधा 'सहस्रदल' से—बिना किसी प्रयास के, बिना भावुकता और उत्सुकता के, और बिना किसी कामना के—क्रिया करती है।...

'इच्छा-शक्ति' सर्वसमर्थ होती है और अगर इसका प्रयोग धीरज के साथ, शान्तिपूर्वक और साहस के साथ किया जाये तो यह सफल होकर रहेगी। 'इच्छा-शक्ति' स्वयं 'काली' है। अतः, अन्त में वह ऐसी क्रिया द्वारा नये नियम, अभ्यास या प्रवृत्तियां स्थापित करती है जो धीरे-धीरे पुरानी आदतों पर हावी हो जाती है। तब होता यह है कि पुरातन—चूंकि उसे दबा दिया जाता है—दुर्बल हो जाता है और चूंकि वह मनुष्य की प्रकृति का सच्चा भाग नहीं रह पाता इसलिए आधार को छोड़ने में प्रतिरोध करता है। नूतनता को आध्यात्मिक सत्ताओं की शक्ति की सेना थामे रखती है और वे तुम्हें घेरे रहती और तुम्हें अनुभूतियां और आनन्द प्रदान करती हैं। लेकिन जब तक नूतनता स्थायी नहीं हो जाती, प्रतिरोध जारी रहता है। प्रतिरोध का यह काल योग का अगला चरण होता है। और जब तक कि 'इच्छा-शक्ति' सिद्ध तथा शुद्ध नहीं हो जाती, साधक के लिए कठिनाई का काल होता है, क्योंकि तब उसे प्रतिरोध की क्षमता का अन्त ही नहीं दिखायी देता।

लेकिन अगर उसकी 'इच्छा-शक्ति' की पीठ पर श्रद्धा या ज्ञान हों तो

वह जीत कर रहेगी। भले ही खदेड़ी हुई आदतें और प्रवृत्तियां शरीर में घुस कर शक्ति और आनन्द के अपने पुराने आसन पर जमने की निरन्तर कोशिश में क्यों न लगी रहें, वे सफल न हो पायेंगी। इसे पुनरावर्तन कहते हैं। जिस अनुपात में 'इच्छा-शक्ति' सिद्ध और आधार शुद्ध बनता जाता है, उसी अनुपात में विरोधी शक्तियों के पुनरावर्तन अधिक कमजोर पड़ते जाते हैं, वे बार-बार नहीं होते, होते भी हैं तो बहुत समय तक नहीं टिक पाते। लेकिन अशुद्ध आधार में या त्रुटिपूर्ण 'इच्छा-शक्ति' में पुनरार्वतन बहुधा प्रतिरोध के जितने दीर्घकालिक और कष्टप्रद होते हैं।

दूसरी ओर, तीन सहायक नियम हैं। अगर एक बार नया अभ्यास या प्रवृत्ति सुप्रतिष्ठित हो जाये तो यह नियम है कि वह प्रवृत्ति बल और पूर्णता की ओर विकसित होगी। जब तक वह अपने-आपको प्रतिष्ठित करने के लिए संघर्ष करती है, योगी किसी भी समय भ्रष्ट हो सकता है, यानी वह भूल-भ्रान्ति, दौर्बल्य या अधैर्य के कारण मैदान छोड़ सकता है। योगी के लिए यही पतन है। जब तक कि वह संघर्ष से युद्ध करता रहता है, असफलता, अस्थायी पराजय उसका कुछ नहीं बिगाड़ सकतीं। और एक बार उचित मनोवृत्ति प्रतिष्ठित हो जाये तो कोई मनुष्य उसे नष्ट नहीं कर सकता।...

CWSA खण्ड ११, पृ. १३७४-७८

मनुष्य में ईश्वर की शक्ति

फिर भी, पहले पहल जब तक 'इच्छा-शक्ति' अनुपाततः दुर्बल या अनभ्यासी होती है, निश्चित है कि प्रगति भी धीमी होगी। जिस अनुपात में 'इच्छा-शक्ति' की पूर्णता आधार में शुद्धि लाती है, उसी अनुपात में प्रगति भी तेज होती जाती है। इस संसार में सभी कुछ करने की एक प्रक्रिया होती है; प्रक्रिया का अर्थ है—कुछ मान्यताप्राप्त स्तरों से होती हुई क्रियाओं की एक ृंखला जो एक विशेष परिणाम तक पहुंचा दे। इन स्तरों से धीमे या तेजी से गुजरा जा सकता है, लेकिन सभी स्तरों को क्रमशः और सचेतन रूप से पार करना होता है। हम सभी को जीवन में कितने ही मील के पत्थरों से गुजरना होता है; तुम उन्हें पैदल चल कर, घोड़ागाड़ी में बैठ कर, रेलगाड़ी में सवार होकर पार कर सकते हो, लेकिन सभी

तुम्हें पार तो करने होंगे ही। और साथ ही 'इच्छा-शक्ति' की विकसित होती हुई क्षमता द्वारा तुम धीमी प्रक्रिया को द्रुत प्रक्रिया में बदल सकते हो। फिर एक ऐसा समय आता है जब 'काली' सामान्य मानव-सीमाओं को पार करके, फिर मनुष्य की शक्ति न बनी रह कर, मनुष्य के अन्दर स्थित 'ईश्वर' की शक्ति बन जाती हैं। और तब क्रमिक प्रक्रियाओं का स्थान एकाग्रचित्त या संकेन्द्रित प्रक्रियाएं ले लेती हैं। यह ऐसा है मानों एक चट्टी से दूसरी चट्टी तक जाने के बजाय तुम पहली चट्टी से तीसरी पर छलांग लगा सकते हो और इस तरह अपने सफर के अन्त तक शीघ्रता से पहुंच सकते हो। दूसरे शब्दों में, प्रक्रिया वही समान रहती है, लेकिन कुछ स्तरों को छोड़ते हुए निकला जा सकता है। वास्तव में, उन स्तरों को इतनी आसानी से पार कर लिया जाता है कि पता ही नहीं चलता। इसी कारण इसे एकाग्रचित्त या संक्षिप्त प्रक्रिया कहा जाता है।

CWSA खण्ड ११, पृ. १३७८ —श्रीअरविन्द

१०.९.१९२६

शिष्य—ऐसा लगता है कि तन्त्र में प्रतीक होते हैं। विभिन्न चक्र या केन्द्र होते हैं, जो एक के बाद एक खुलते हैं।

श्रीअरविन्द—ऐसा कोई बंधा हुआ नियम नहीं है कि कोई विशेष चक्र पहले खुलता हो। हृदय चैत्य-केन्द्र है और अगर वह पहले खुले तो वह उद्घाटन बहुत अच्छा है।

'सान्ध्य-वार्ताएं' —ए. बी. पुराणी

यह कारा जो मुझे तुमसे और भगवान् से दूर करती है, तोड़ी जानी चाहिये। हे मां, मैं नहीं जानता कि मुझे क्या करना चाहिये?

इसे अचञ्चल तथा अध्यवसायपूर्ण इच्छा द्वारा
उपलब्ध किया जा सकता है।

—श्रीमां

पूर्णयोग तथा तन्त्र

कुण्डलिनी, चक्र तथा पूर्णयोग

इस योग में 'शक्ति' का आरोहण तथा अवतरण अपने ही तरीके से होता है, यह जरूरी नहीं है कि वह तन्त्र की किताबों में दिये गये ब्योरों के अनुसार हो। कई लोग केन्द्रों के बारे में सचेतन हो जाते हैं, लेकिन कई दूसरे बस सामान्य रूप में आरोहण या अवतरण का अनुभव करते हैं; यानी, यह नहीं कि उन्हें एक केन्द्र से दूसरे केन्द्र में—सिर से हृदय में, वहां से नाभि में और फिर मूलाधार में शक्ति के उतरने का अनुभव होता है। यह बिलकुल जरूरी नहीं है कि तान्त्रिक व्याख्या के अनुसार केन्द्रों में स्थित देवताओं के बारे में सचेतन हुआ जाये, बल्कि कुछ लोग विभिन्न केन्द्रों में माताजी का अनुभव करते हैं। इन चीजों में हमारी साधना पुस्तकों में दिये हुए ज्ञान से चिपक कर नहीं चलती, बस उनके पीछे के केन्द्रीय सत्य को लेकर, पुराने रूपों और प्रतीकों की दासता से मुक्त, स्वतन्त्र रूप से आगे बढ़ती है। हमारे यहां स्वयं केन्द्रों का, तान्त्रिक पुस्तकों में दिये गये अर्थ से भिन्न अर्थ है।

तान्त्रिक ज्ञान के अनुसार जब कुण्डलिनी जाग्रत् होती है तो वह सभी केन्द्रों को शुद्ध करती हुई ऊपर उठती है। हमारे योग में कुण्डलिनी किसी बंधी-बंधायी प्रक्रिया द्वारा नहीं उठती, न ही उसमें केन्द्रों के उद्‌घाटन और उनके शुद्धीकरण का कोई नियम होता है। यहां दूसरा तरीका अपनाया जाता है, लेकिन यहां भी ऊपर उच्चतर चेतना के साथ युक्त होने के लिए विभिन्न स्तरों से उठ कर और उनके अन्दर से गुजरना होता है; केन्द्रों और स्तरों (मानसिक, प्राणिक, भौतिक) का उद्‌घाटन होता है जिन्हें ये केन्द्र आदेश देते हैं; ऊपर से अवतरण भी होता है और वही आध्यात्मिक रूपान्तर की प्रमुख कुञ्जी है। इसीलिए मैंने कहा कि इस योग में रूपान्तर की प्रक्रिया के पीछे एक तान्त्रिक ज्ञान है।

*

पूर्णयोग में चक्रों का स्वैच्छिक उद्‌घाटन नहीं होता, वे 'शक्ति' के अवतरण से स्वतः ही खुल जाते हैं। तान्त्रिक अनुशासन में वे नीचे से

ऊपर की ओर खुलते हैं, सबसे पहले मूलाधार से—हमारे योग में, वे ऊपर से नीचे की ओर खुलते हैं। लेकिन मूलाधार से शक्ति का आरोहण निश्चित होता है।

*

जहां तक मुझे मालूम है, कुण्डलिनी का आरोहण—उसका अवतरण नहीं—मान्यताप्राप्त तथ्य है; हमारे योग में इसके सदृश एक तथ्य है—प्राण या भौतिक के ऊपर ऐसा अनुभव होता है कि प्राण या भौतिक से उठ कर चेतना ऊपर उच्चतर चेतना से भेंट करने जा रही है। यह जरूरी नहीं है कि यह चक्रों के द्वारा अनुभूत हो, बल्कि बहुधा यह अनुभव सारे शरीर में होता है। उसी तरह से, उच्चतर चेतना का अवतरण भी जरूरी नहीं है कि चक्रों के द्वारा अनुभूत हो, बल्कि यह सम्पूर्ण मस्तिष्क, गले, छाती, पेट, शरीर—सबको अपने अन्दर समाये प्रतीत होता है।
CWSA खण्ड २९, पृ. ४५९-६०

काम-वासना के आवेगों पर प्रभुत्व पाना

शिष्य—हमारे योग में हमें निम्न गतियों से पीछा छुड़ाना होता है क्योंकि वे साधना में रोड़े अटकाती हैं, लेकिन तान्त्रिक—विशेष रूप से वीर साधक—इन बाधाओं को महत्त्व देते हैं और इनसे सहायता लेकर आध्यात्मिक जीवन का निर्माण करते हैं।

श्रीअरविन्द—अपने-आपमें कामुक-क्रिया बुरी नहीं है जैसा कि नैतिकतावादी उसे मानते हैं। यह प्रकृति की एक गति है जिसका अपना उद्देश्य है, और वह उद्देश्य न अच्छा है न बुरा। लेकिन, योग की दृष्टि से, कामुक-शक्ति संसार में सबसे बड़ी शक्ति है और अगर उसका उचित तरीके से उपयोग किया जाये तो वह सत्ता के पुनरुज्जीवन में सहायता करती है। लेकिन अगर सामान्य तरीके से इसका उपभोग किया जाये तो दो कारणों से यह बड़ी बाधा बन जाती है। पहला, कामुक-क्रिया में प्राणिक शक्ति का बहुत अधिक ह्रास होता है, यह मृत्यु की ओर ले जाने वाली क्रिया है, हालांकि नूतन जीवन की सृष्टि से उस ह्रास की क्षतिपूर्ति हो जाती है।

यह मृत्यु की ओर ले जाने वाली गति है इसका प्रमाण इस बात से मिलता है कि इस क्रिया के बाद पूरी थकान उतर आती है; कई लोग तो जुगुप्सा का अनुभव करते हैं।...

दूसरा कारण है : सामान्य कामुक-क्रिया के साथ लगी उत्तेजना मनुष्य के अन्दर की चैत्य सम्भावनाओं को नष्ट कर देती है। वह चेतना के उच्चतर केन्द्रों से अलग होकर उनसे असम्बद्ध हो जाता है और नीचे ढलान पर फिसलने लगता है। कुछ लोग कहते हैं कि वे यह मनोभाव अपना लेते हैं कि उनके द्वारा शक्ति भोग कर रही है, लेकिन यह कहने का तरीका-भर है। लोग निम्न गतियों में रस लेते हैं, विरोधी शक्तियों के सामने झुक जाते हैं और कई बार वे योगी का जामा पहन लेते हैं; यहां तक कि वेदान्तिक मनोभाव रखने वाले भी कई बार विरोधी शक्तियों के अधीन होकर यही बहाना बनाते हैं। वे कहते हैं, "यह सब माया है, माया, कोई सद्‌गुण—कोई शुभ, कोई अशुभ नहीं है," और इस तरह वे अपने-आपको निम्न प्राणिक शक्तियों के उत्सर्ग कर देते हैं।

शिष्य—लेकिन क्या स्वभाव की निम्न गतियां अपने-आपमें विरोधी नहीं हैं?

श्रीअरविन्द—नहीं, लेकिन वे विरोधी शक्तियों के प्रति मनुष्य को खोल देती हैं और विरोधी शक्तियां अपने उद्देश्य के लिए इन निम्न गतियों का उपयोग करती हैं।

'सान्ध्य-वार्ताएं' —ए. बी. पुराणी

कामुक-आवेगों का रूपान्तरण

समस्त कामुक-सिद्धान्त को धरती पर भागवत जीवन से अलग नहीं किया जा सकता—स्थूल भौतिक सेक्स-आवेग को इसमें नहीं गिना जाता। काम-वासना जीवन में है और मानव जीवन में यह बहुत बड़ी भूमिका निभाती है, इसे नकारा नहीं जा सकता, इसकी अवहेलना नहीं की जा सकती, इसे दबा कर रखा नहीं जा सकता, आंखों से ओझल नहीं किया जा सकता। पहली बात तो यह है कि अपने एक पक्ष में यह शक्ति वैश्व, यहां तक कि भागवत सिद्धान्त का सहारा लिये होती है : यह ईश्वर और

शक्ति का आध्यात्मिक रूप लेती है और इसके बिना कोई विश्व-रचना या अभिव्यक्ति नहीं हो सकती। विश्व जिस सिद्धान्त पर खड़ा है उसमें 'परम पुरुष' और 'परमा प्रकृति' दोनों सृजन के लिए अनिवार्य हैं, उनका साहचर्य, उनका आदान-प्रदान अनिवार्य है; धरती की इस सम्पूर्ण लीला में वे पुरुष-आत्मा और प्रकृति के रूप में यहां कार्य करते और अभिव्यक्त होते हैं। स्वयं भागवत जीवन में भी कोई देहधारी अवतार या किसी रूप में दो शक्तियों की उपस्थिति या उनका नेतृत्व नयी सृष्टि की रचना के लिए अनिवार्य होंगे। अपनी मानव-क्रिया में भी, मानसिक तथा प्राणिक स्तर पर सेक्स पूरी तरह से अदिव्य सिद्धान्तवाला नहीं होता; उसके अपने उच्च पहलू और आदर्श होते हैं और देखना यह है कि किस तरीके से और किस हद तक इन्हें नये तथा बृहत्तर जीवन में प्रवेश मिल सकता है। सेक्स में कामना और आवेग के सभी स्थूल पाशविक उपभोग को निकाल बाहर करना होगा; यह बस उन्हीं में जारी रह सकता है जो उच्चतर जीवन के लिए तैयार नहीं हैं या अभी तक पूर्ण आध्यात्मिक जीवन के लिए प्रस्तुत नहीं हैं। उन सभी में, जो उच्चतर जीवन की अभीप्सा तो करते हैं, लेकिन उसे पूरी तरह से ग्रहण नहीं कर पाते, उनके अन्दर कामना-वासना को सुसंस्कृत बनाना होगा, उसे आध्यात्मिक या चैत्य प्रभाव के अधीन करना होगा और उच्चतर मन और उच्चतर प्राण के वश में करना होगा। इसमें से समस्त ओछी, छिछली, नीचे गिराने वाली गतियों को झाड़ फेंकना होगा और अपने आदर्श की शुद्धि के स्पर्श को अनुभव करना होगा।

CWSA खण्ड १३, पृ. ५४३-४४ —श्रीअरविन्द

पुरुष और स्त्री के बीच आध्यात्मिक सम्बन्ध

आध्यात्मिक ऐक्य में स्त्री, जो शक्ति का प्रतिनिधित्व करती है, उसे सचमुच एक 'शक्ति' होना चाहिये—अर्थात् उसे एक ऐसा शक्तिशाली व्यक्तित्व होना चाहिये जो उचित तरीके से 'पुरुष' से सहायता प्राप्त कर सके। दोनों को एक दूसरे का सच्चा सहायक होना चाहिये : यह सम्बन्ध पाना सभी सम्बन्धों में सबसे अधिक कठिन है। ये कठिनाइयां साधक के मार्ग में आती हैं। सिद्ध—पूर्णताप्राप्त आत्मा के लिए—कोई कठिनाई नहीं होती। वह एकदम अच्छी तरह से जानता है कि किसे अभिव्यक्त होना है। अगर

उसकी शक्ति उपस्थित है तो उसे मालूम होगा कि वह कहां है और वह उसे प्राप्त कर लेगा।

शिष्य—अतिमानसिक योग के लिए क्या 'शक्ति' अनिवार्य है?

श्रीअरविन्द—योग के लिए शक्ति अनिवार्य होती है : शक्ति के बिना पूर्ण ज्ञान, चेतना, बल और आनन्द को प्राप्त नहीं किया जा सकता। अगर इन तत्त्वों को लाना और जीवन में अभिव्यक्त करना है तो शक्ति का होना बहुत जरूरी है। अगर कोई 'शक्ति' न हो तो पुरुष 'ज्ञान', 'बल', 'आनन्द' इत्यादि को नीचे नहीं उतार सकता। ये चीजें जीवन में अनिवार्य हैं।

*

अधिकतम लोग जिसे 'प्रेम' कहते हैं वह सतही चीज होती है और अधिकतर प्राणिक लालसा के लोभ से बंधी रहती है। इस चीज का पूरी तरह से बहिष्कार करना ही होगा। इससे कहीं अधिक गभीर एक सम्बन्ध होता है : वह है आत्मा का सम्बन्ध। यह सम्बन्ध स्वयं व्यक्ति के अन्दर से आता है। यह पुरुष और स्त्री दोनों में आदर्श एकता के रूप में अभिव्यक्त होता है—मन की एकता, अन्तरात्मा की एकता, स्व की एकता। ऐसा सम्बन्ध शान्त, अचञ्चलता से भरपूर, विस्तृत और पवित्र होता है। इसमें प्राणिक वासना और भौतिक सम्बन्ध की लालसा नहीं होती। नर और नारी के बीच भी 'पुरुष' और 'शक्ति' का सम्बन्ध भी सम्भव है। लेकिन यह सामाजिक नहीं है, यह सामान्य नहीं है। क्योंकि अगर किसी पुरुष का किसी स्त्री से विवाह हुआ है तो इसका यह अर्थ नहीं है कि उसकी पत्नी अनिवार्य रूप से उसकी शक्ति हो।

जब तक कि इन सम्बन्धों को तुम समझ नहीं सकते, इनका अनुभव नहीं कर सकते, तब तक एक और सम्बन्ध रखना भी सम्भव है—मित्र का। यानी, तुम्हें अपनी पत्नी के साथ वैसे ही रहना चाहिये जैसे तुम अपने किसी ऐसे साथी के साथ रहो जिसके जीवन का लक्ष्य समान हो—बस उसके साथ मित्रता के सम्बन्ध के अलावा और कोई सम्बन्ध न रखो।

'सान्ध्य-वार्ताएं' —ए. बी. पुराणी

अनन्त 'शक्ति' का तरीका

'शक्ति' तथा उसकी क्रिया में श्रद्धा की आवश्यकता

हमारे अन्दर भगवान् के लिए श्रद्धा और प्रेम होने चाहियें, हमें यह ज्ञान प्राप्त करना चाहिये कि हमारे द्वारा, यानी हमें यन्त्र बना कर भगवान् स्वयं अपने-आपको परिपूर्ण कर रहे हैं, वे योगसिद्धि को, हमारे जीवन-कार्य को, हमारे अन्दर के समस्त शुभ को—भले ऊपरी दृष्टि से वह अशुभ से ढका हुआ प्रतीत हो—सम्पन्न कर रहे हैं और हमारे अन्दर उस शक्ति के सामर्थ्य पर भी श्रद्धा होनी चाहिये जो भगवान् के द्वारा हमारे शरीर के आधार में अभिव्यक्त हुई है ताकि वह इस आधार को बनाये रखे और योग तथा जीवन में भागवत ज्ञान, शक्ति तथा आनन्द को सम्पन्न कर दे। श्रद्धा के बिना शक्ति नहीं होती; अपूर्ण श्रद्धा का अर्थ है अपूर्ण शक्ति। अपूर्णता या तो श्रद्धा की शक्ति में हो सकती है या उसकी प्रदीप्ति में। यह पर्याप्त है कि श्रद्धा की पूरी बाढ़ शरीर में उतर आये, क्योंकि योग के आरम्भ से ही पूर्ण प्रदीप्ति का उदय होना सम्भव नहीं। तब, भले हम मार्ग में बार-बार ठोकर खायें, लड़खड़ायें, हमारी श्रद्धा की शक्ति हमें थामे रखेगी। जब हमें रास्ता नहीं सूझेगा तो हमें पता होगा कि प्रभु मशाल लिये

खड़े हैं, हम जानते हैं कि वे हमारे ऊपर भूलों को इसलिए आरोपित करते हैं कि हम उन्हें छलांग का तख्ता बना कर ज्ञान में पहुंच जायें, ठीक उसी तरह जैसे वे हमारे ऊपर पराजय को आरोपित कर विजय की ओर जाने वाला मार्ग खोल देते हैं।

CWSA खण्ड ११, पृ. १३

कृत्रिम पथ तथा अनन्त की स्वतन्त्रता

तुम्हारे अन्दर एक महान् कार्य किया जा रहा है—तुम्हारी सारी मानव-प्रकृति का भागवत प्रकृति में परिवर्तन, सैकड़ों सालों के क्रम-विकास को कुछेक वर्षों में समेटा जा रहा है। तुम्हें समय की शिकायत नहीं करनी चाहिये। और कई ऐसे पथ हैं जो अधिक तात्कालिक परिणाम ले आते हैं, वे कोई निश्चित क्रिया तुम्हें दे देते हैं और तुम अपने अन्दर कार्य करने लगते हो, तुम अपने अहंकार को यह सन्तुष्टि प्रदान करते हो या उसे यह भान दिलाते हो कि तुम कुछ कर रहे हो, आज तुमने इतना अधिक प्राणायाम किया, ज्यादा समय के लिए आसन जमा कर बैठे, जप को अनेकों बार दोहराया, कितना कुछ किया, तुमने निश्चित रूप से बहुत प्रगति कर ली। लेकिन एक बार तुमने पूर्णयोग के इस पथ को चुन लिया तो बस इसी से चिपके रहो। उन दूसरे सभी पथों की पद्धति मानवीय है, उस अनन्त परमा शक्ति की पद्धति नहीं जो चुपचाप क्रिया करती रहती है, कभी-कभी तो यह दिखायी ही नहीं देता कि वह लक्ष्य की ओर बढ़ भी रही है या नहीं, कभी एक ओर अग्रसर होती दीखती है तो कभी ठहरी हुई प्रतीत होती है, उसके बाद सशक्त रूप से विजयिनी होकर उस भव्य-शानदार लक्ष्य को दर्शाती है जिसे उसने पा लिया है। इसमें चहुंमुखी, सच्ची प्रगति होती है। कृत्रिम पथ उन नहरों की तरह हैं जिन्हें मनुष्यों ने अपनी बुद्धि से बनाया है; तुम उस पथ पर आराम से, सुरक्षित, निश्चित रूप से आगे बढ़ते जाते हो, एक निश्चित स्थान से दूसरे निश्चित स्थान पर पहुंचते हो। हमारे योग का पथ विशाल-अन्तहीन सागर-जैसा है जिससे होकर तुम संसार के सभी भागों में पहुंच सकते हो और अनन्त की उन्मुक्तता में प्रवेश पा सकते हो। बस तुम्हें आवश्यकता होती है जहाज की, जहाज चलाने के चक्के की, दिशा दिखाने वाले यन्त्र की, प्रेरक शक्ति

और एक कुशल कप्तान की। ब्रह्मविद्या तुम्हारा जहाज है, श्रद्धा तुम्हारे जहाज को चलाने वाला चक्का है, आत्म-समर्पण तुम्हें दिशा दिखलाने वाला यन्त्र है, प्रेरक शक्ति वे परमा शक्ति हैं जो भगवान् के आदेश पर लोकों को बनाती, चलाती और नष्ट करती हैं और स्वयं 'भगवान्' तुम्हारे कप्तान हैं। लेकिन कार्य करने का उनका अपना तरीका होता है और प्रत्येक चीज को सम्पन्न करने के लिए वे अपना समय लेते हैं।

CWSA खण्ड १३, पृ. ८७-८८

अतिमानसिक योग की कुञ्जी है—आत्मोत्सर्ग

अतिमानसिक योग एक साथ अन्तरात्मा का ऊपर भगवान् की ओर आरोहण तथा नीचे उन भगवान् का हमारे शरीर में अवतरण है। आरोहण अन्तरात्मा, मन तथा प्राण की ऊपर उठती हुई एक-केन्द्रित, सर्व-समावेशी अभीप्सा की मांग करता है और अवतरण मांग करता है अनन्त तथा शाश्वत प्रभु की ओर समस्त सत्ता की पुकार की। अगर यह पुकार और यह अभीप्सा हों, और अगर वे निरन्तर बढ़ती रहें और सारी सत्ता को बांध लें, केवल तभी, सत्ता का अतिमानसिक रूपान्तर सम्भव होता है।

इसके लिए तुम्हारी सारी सत्ता में उद्घाटन तथा समर्पण होना चाहिये ताकि वह उस महानतर भागवत चेतना को ग्रहण कर सके, उसके अन्दर प्रवेश कर सके जो पहले से ही इस मर्त्य अर्ध-चेतन अस्तित्व के पीछे स्थित है और उसे घेरे हुए है। इसके साथ ही साथ, जब तक कि अन्तरात्मा अनन्त माता के हाथों में एक बालक की तरह न बन जाये, उस सतत शक्तिशाली तथा सतत आग्रहशील भागवत शक्ति को धारण करने के लिए तुम्हारे अन्दर सतत वर्धनशील क्षमता भी होनी चाहिये। यहां दूसरे योग में प्रयुक्त अन्य साधनों का उपयोग भी किया जा सकता है, यहां तक कि, कभी-कभी इस योग में भी उन्हें अधीनस्थ प्रक्रियाओं के रूप में व्यवहार में लाया जा सकता है, लेकिन वे साधन इस महान् योग-प्रणाली के बिना शक्तिहीन हैं, और एक बार यह योग-प्रणाली प्रतिष्ठित हो जाये तो उन साधनों की अनिवार्यता समाप्त हो जाती है। अन्त में यह पता लगेगा कि इस योग के लक्ष्य तक मन, प्राण तथा शरीर के किसी प्रयास अथवा किसी भी मानवीय मनोवैज्ञानिक या भौतिक प्रक्रिया द्वारा नहीं पहुंचा जा

सकता, केवल परमा 'शक्ति' की क्रिया द्वारा ही इस तक पहुंचा जा सकता है। लेकिन उसके तरीके एक ही साथ गुह्य रूप से एकदम सीधे तथा बाहरी रूप से दुर्बोध, बहुत महान्, बहुत पूर्ण होते हैं और मानव-समझ के लिए इतने सूक्ष्म होते हैं कि मानव उन्हें सूत्रबद्ध ही नहीं कर सकता।

मानव स्वयं अपने प्रयास से मानव से अधिक नहीं बन सकता, लेकिन वह हमेशा दिव्य सत्य तथा दिव्य शक्ति का आह्वान कर उन्हें नीचे उतार सकता है कि वे उस पर कार्य करें। केवल भागवत 'प्रकृति' का अवतरण ही मानव को दिव्यता में ढाल सकता है। रूपान्तरकारी परमा शक्ति के प्रति आत्मोत्सर्ग ही इस योग की कुञ्जी है।

CWSA खण्ड १३, पृ. ३६५-६६

भागवत शक्ति की क्रिया

शक्ति—अनन्त तथा शाश्वत शक्ति—हमारे अन्दर अवतरित होती है, कार्य करती है, हमारे सभी आवरणों को तोड़ देती है, सभी दीवारों को ढहा कर हमें विशाल बनाती, मुक्त कर देती है, हमेशा हमारे सामने अन्तर्दर्शन, विचार और प्रत्यक्ष ज्ञान के नूतनतर तथा महानतर क्षितिज खोलती है, आत्मा तथा उसके साधनों को अधिकाधिक विस्तृत करके नये सांचों में ढालती है, प्रत्येक अपूर्णता को हमारे सामने ला खड़ा करती है ताकि उसे दोषी ठहरा कर दूर कर दिया जाये, यह हमें महानतर पूर्णता की ओर खोल देती है, कई जन्मों या युगों का कार्य अल्पकाल में कर डालती है जिसके परिणाम-स्वरूप नूतन जन्म तथा नूतन दृश्य हमारे अन्दर लगातार खुलते जाते हैं। अपने कार्य में विस्तारशील, यह हमारी चेतना को शरीर की सीमा से मुक्त कर देती है; फलतः हमारी चेतना समाधि या नींद में, यहां तक कि जाग्रत् अवस्था में भी बाहर जाकर अन्य लोकों में या इस लोक के अन्य प्रदेशों में प्रवेश कर वहां कार्य कर सकती है अथवा वहां से अपना अनुभव अपने साथ ला सकती है। यह बाहर फैल जाती है, शरीर को अपना एक छोटा-सा भागमात्र अनुभव करती है, और उसे अपने अन्दर धारण करने लगती है जो पहले स्वयं उसी को अपने अन्दर धारण किये रहता था। वह शक्ति वैश्व चेतना को प्राप्त करती है और विश्व के समान व्यापक बनने के लिए स्वयं को विस्तृत करती है। फिर

जगत् में क्रीड़ारत शक्तियों को यह बाहरी निरीक्षण तथा सम्पर्क से ही नहीं, बल्कि अन्दर से तथा प्रत्यक्ष रूप से जानने लगती है, उनकी गति को अनुभव करती है, उनके क्रिया-कलाप को पहचानती है, और उन पर तुरन्त ही उसी प्रकार क्रिया कर सकती है जिस प्रकार एक वैज्ञानिक भौतिक शक्तियों पर क्रिया करता है। सनातन देव की यह शक्ति हमारे मन, प्राण तथा शरीर में उनके कार्यों तथा परिणामों को स्वीकृत या अस्वीकृत करके, या फिर संशोधित, परिवर्तित अथवा पुनर्गठित करके प्रकृति की पुरानी क्षुद्र क्रियाओं के स्थान पर नयी महान् शक्तियां तथा गतियां उत्पन्न कर सकती है। तब हम वैश्व मन की शक्तियों की क्रिया करने के तरीकों को अनुभव करने लगते हैं और यह जानने लगते हैं कि किस प्रकार उस क्रियावली से हमारे विचार उत्पन्न होते हैं। अपने मानसिक बोधों के सत्य और असत्य को हम अन्दर से अलग-अलग करते हैं और सत्य का क्षेत्र बढ़ाते हैं और उसके अर्थ को विस्तारपूर्वक प्रकाशित करते हैं। तब हम अपने मन तथा कर्म के स्वामी बन जाते हैं और अपने चारों ओर के जगत् में मन की गतियों का रूप निर्धारित करने में समर्थ और तत्पर हो जाते हैं। हम विश्वव्यापी प्राण-शक्तियों की धारा और तरंग को अनुभव करने लगते हैं, अपने बोधों, भावों, संवेदनों एवं आवेगों के उद्‌गम और नियम को जान लेते हैं, उन्हें स्वीकार करने, परित्याग करने एवं पुनर्गठन करने में स्वतन्त्र होते हैं और प्राणशक्ति के उच्चतर स्तरों की ओर उठ जाते हैं। तब हमें 'जड़तत्त्व' की पहेली की कुञ्जी भी उपलब्ध होने लगती है, हम 'मन', 'प्राण' तथा 'चेतना' के साथ होने वाली इसकी क्रीड़ा को समझ लेते हैं, इसके व्यापार को अधिकाधिक जानते लगते हैं और अन्त में इसके इस चरम रहस्य का पता पा लेते हैं कि यह 'जड़तत्त्व' केवल शक्ति का ही नहीं, बल्कि अस्थिर तथा बद्ध चेतना का भी रूप है और हम यह भी देखने लगते हैं कि यह मुक्त हो सकता है तथा उच्चतर शक्तियों को प्रत्युत्तर देने के लिए नमनीय बन सकता है और यह भी कि इसमें ऐसी सम्भावनाएं भी हैं कि यह आत्मा के कार्य में पूर्ण सहयोग दे सकता है। यह सब और इससे भी अधिक उत्तरोत्तर कार्य सम्भव होता जाता है क्योंकि भागवत शक्ति की क्रिया हमारे अन्दर बढ़ती रहती है—भले हमारे अन्दर की अन्धकारमयी चेतना उसका जितना भी प्रतिरोध करती रहे,

लेकिन अन्त में वह भागवत शक्ति जीत ही जाती है और महानतर पवित्रता, सत्यता, उच्चता तथा विशालता की ओर अग्रसर होती जाती है। यह सब हमारे अन्दर होने वाले आन्तरिक जागरण पर, भागवत शक्ति के प्रति हमारे प्रत्युत्तर की पूर्णता तथा हमारे वर्धनशील समर्पण पर निर्भर करता है। CWSA खण्ड २३, पृ. १८३-८४

शक्ति का आरोहण तथा अवतरण

तुमने अपनी जिस जटिल अनुभूति का वर्णन किया है वह साधना में पहली डुबकी लगाना है। पहले तुम्हें अनुभूति हुई आन्तरिक गहराइयों के गर्भ में पैठने की, फिर अचञ्चलता, सुखद सुन्नता की और अवयवों के कठोरपन की। यह है, ऊपर के दबाव के कारण शरीर से दूर हटती चेतना का अन्दर जाना—यह दबाव शरीर को एक आन्तरिक सहारा देकर उसे स्थिरता प्रदान करता है और शरीर एक सशक्त और साथ ही सहज आसन-मुद्रा ग्रहण कर लेता है। उसके बाद तुम्हें लहरों के ऊपर उठने का भान हुआ, जो सिर तक चढ़ आयीं, और जैसा कि तुम कह रहे हो कि इस चीज से तुम अचेत हो गये। यह आधार में निम्न चेतना का ऊपर उच्चतर चेतना से भेंट करने के लिए उठान था। यह वही गति है जिस पर तान्त्रिक प्रक्रिया में बहुत जोर दिया जाता है—कुण्डलिनी का जागरण, शरीर में कुण्डली मारे जो शक्ति सोयी रहती है वही जाग्रत् होकर रीढ़ की हड्डी तथा विभिन्न चक्रों और ब्रह्मरन्ध्र से होती हुई ऊपर भगवान् से जा मिलती है। लेकिन हमारे योग में यह कोई अति विशिष्ट प्रक्रिया नहीं है बल्कि समस्त निम्नतर प्रकृति का तेज लहरों में ऊपर उछाल होता है और दूसरी ओर, ऊपर से 'दिव्य चेतना' तथा उनकी 'शक्ति' नीचे शरीर में अबाध उतरती हैं। यह अवतरण ऐसा प्रतीत होता है मानों 'भागवत सत्ता' अथवा 'भागवत उपस्थिति' के द्वारा अचञ्चलता तथा शान्ति का, शक्ति और बल का, हर्ष तथा आनन्द का, विस्तार, स्वतन्त्रता तथा ज्ञान का अवतरण हो रहा है —कभी कभी इन दोनों में से कोई एक शक्ति अथवा कभी ये दोनों तथा साथ ही अन्य शक्तियां भी एक साथ उतरती हैं। आरोहण की गति के विभिन्न परिणाम होते हैं: यह आरोहण चेतना को मुक्त कर देता है जिससे मनुष्य स्वयं को शरीर से बंधा हुआ नहीं अनुभव करता, बल्कि शरीर के

ऊपर या फिर शरीर के साथ विस्तार में फैला हुआ—या तो प्रायः निर्वैयक्तिक या अपने मुक्त फैलाव में बिन्दुमात्र-जैसा अनुभव करता है; वह सक्षम होता है कि सत्ता का कोई भाग शरीर के अन्दर से निकल कर बाहर घूम आये। और यह क्रिया सामान्यतया किसी प्रकार की आंशिक समाधि या फिर पूर्ण ध्यानावस्था के द्वारा होती है। या फिर यह अवस्था सारी सत्ता पर हावी हो जाती है, फिर वह शरीर के साथ तथा स्वभाव की बाहरी आदतों से बंधी नहीं रहती; तब व्यक्ति आन्तरिक मानसिक, आन्तरिक प्राणिक, आन्तरिक (सूक्ष्म) भौतिक, चैत्य की गहराइयों में प्रवेश कर जाता है ताकि वह अपनी अन्तरतम चैत्य-आत्मा या अपनी मानसिक, प्राणिक और सूक्ष्म भौतिक सत्ता के बारे में सचेतन हो सके और फिर वह इनके सदृश के लोकों, स्तरों और जगतों में विचरण कर सकता, उनमें बना रह सकता है। तुम्हारे मामले में यही हुआ। निम्न चेतना के बार-बार और अनवरत आरोहण के द्वारा ही मन, प्राण तथा शरीर उच्चतर स्तरों-—अतिमानस तक—उठ गये और उनके प्रकाश, शक्ति तथा प्रभाव से ओत-प्रोत हो गये। और उधर 'भागवत चेतना' तथा उनकी 'शक्ति' के बार-बार और सतत अवतरण के द्वारा ही समस्त सत्ता और समस्त प्रकृति का रूपान्तर होता है। एक बार यह अवतरण प्रायिक हो जाये तो 'भागवत शक्ति', 'मां' की शक्ति कार्य करना आरम्भ कर देती है और तब न केवल ऊपर से या परदे के पीछे से बल्कि सचेतन रूप से स्वयं आधार में वही शक्ति सभी कठिनाइयों और साथ ही सभी सम्भावनाओं के साथ व्यवहार करती हुई योग सम्पन्न करती है।

दिलीप कुमार रॉय को लिखे पत्र से

भागवत 'शक्ति' और भागवत 'सामर्थ्य' (Power) में क्या अन्तर है?

भागवत 'सामर्थ्य' भागवत 'शक्ति' का केवल एक अंश है; भागवत 'सामर्थ्य' भागवत 'शक्ति' का एक गुण है। श्रीअरविन्द यहां भागवत 'शक्ति' शब्द का व्यवहार चित्-तपस् के, सृजनकारी शक्ति, सृजनात्मिका चेतना के अर्थ में कर रहे हैं; फलतः, भागवत 'सामर्थ्य' भागवत 'शक्ति' का केवल एक अंश है।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ४, पृ. ४२७

श्रीमां

माता के रूप में परम पुरुष

दिव्य माता

आद्या परात्पर शक्ति के रूप में माता सब लोकों के ऊपर स्थित हैं और अपनी शाश्वत चेतना में परम-पुरुष को धारण करती हैं। वे अकेली ही अपने अन्दर चरम शक्ति और ऐसी उपस्थिति को लिये रहती हैं जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता। वे ही उन सत्यों को धारण करती या पुकारती हैं जिन्हें इस जगत् में प्रकट होना है। वे उन सत्यों को, उस रहस्यमय स्थान से, जहां वे छिपे हुए थे, उतार कर अपनी अनन्त चेतना की ज्योति में नीचे लाती हैं और उन्हें अपने सर्वशक्तिमान् सामर्थ्य के द्वारा शक्ति का रूप तथा असीम जीवन और विश्व में शरीर प्रदान करती हैं। परम-पुरुष उस माता के अन्दर सनातन काल के लिए अनन्त सच्चिदानन्द के रूप में अभिव्यक्त हैं और उन्हीं के द्वारा लोकों में वे ईश्वर-शक्ति के एक और द्विविध रूप में तथा पुरुष-प्रकृति के द्वैत तत्त्व में अभिव्यक्त होते हैं। परम-पुरुष माता के द्वारा अनेक लोकों और चेतना की भूमिकाओं में तथा देवता और उनकी शक्तियों में मूर्तिमान् हुए हैं। उन्हीं के कारण वे जाने और अजाने लोकों में जो कुछ है उन सब रूपों में साकार हुए हैं। सब कुछ परम-पुरुष के साथ माता की लीला है। माता ने ही इस सारे संसार में सनातन के रहस्यों और अनन्त के चमत्कारों को व्यक्त किया है। माता ही सब कुछ हैं क्योंकि सभी चीजें दिव्य चित्-शक्ति के अंश और भाग हैं। माता जिस बात का निश्चय करती हैं और जिसके लिए परम-पुरुष स्वीकृति देते हैं उसके सिवाय यहां या कहीं और, कुछ भी नहीं हो सकता। परम-पुरुष की प्रेरणा से माता अपने सर्जनशील आनन्द में बीज के रूप में डाल कर जिन चीजों को देखती और आकार देती हैं उनके सिवाय अन्य कोई चीज रूप धारण नहीं कर सकती। अपनी परात्पर चेतना में महाशक्ति, विश्व-माता परम-पुरुष से जो कुछ प्राप्त करती हैं उसे मूर्त रूप देकर अपने बनाये हुए लोकों में स्वयं भी प्रवेश कर जाती हैं। माता की उपस्थिति उन लोकों को अपने दिव्य व्यक्तित्व, अपने धारण करने वाले बल और आनन्द से भर देती है और उन्हें सहारा देती है। इनके बिना उन लोकों का अस्तित्व ही न हो पाता। हम जिसे प्रकृति कहते हैं वह माता का एकदम

बाहरी और कार्य-निर्देशक रूप है। माता अपनी शक्तियों और प्रक्रियाओं की समस्वरता की व्यवस्था करती हैं, प्रकृति के कार्यों को आगे बढ़ाती हैं, इन्द्रियों या अनुभव के द्वारा पकड़ में आ सकने वाली या जीवन की गति के लिए उपयोगी हर वस्तु को प्रकट या अप्रकट रूप से सञ्चालित करती हैं। लोकों में से प्रत्येक, अपने-अपने लोक-संस्थान या विश्व-ब्रह्माण्ड की महाशक्ति की एक लीला के सिवाय कुछ नहीं है। ये महाशक्ति परात्पर माता की वैश्व आत्मा और वैश्व व्यक्तित्व के रूप में उपस्थित हैं। प्रत्येक लोक का वही रूप होता है जो माता ने अपनी दिव्य दृष्टि से देखा, अपनी शक्ति और सौन्दर्य से संजोया और अपने आनन्द द्वारा उत्पन्न किया है।...

माता केवल ऊपर रह कर ही सब पर शासन नहीं करतीं, वे निचले त्रिविध लोकों में भी उतर आती हैं। निर्वैयक्तिक रूप से सभी चीजें, यहां तक कि अज्ञान की गतियां भी—छिपी हुई शक्ति के रूप में स्वयं वे ही हैं। वे उन्हीं के घटे हुए तत्त्व में उनकी प्राकृतिक शक्ति और प्राकृतिक शरीर हैं और इनका अस्तित्व इसलिए है कि अनन्त की सम्भावनाओं में से कुछ को मूर्त रूप देने के लिए परम-पुरुष का रहस्यमय आदेश हुआ था, उस आदेश को मान कर माता ने महान् बलिदान देना स्वीकार किया और अन्तरात्मा तथा अज्ञान के मुखौटों को पहनना स्वीकारा। व्यक्तिगत रूप से भी माता ने इस जगत् के अन्धकार में उतरना स्वीकार किया ताकि वे उसे ज्योति की ओर ले जा सकें; वे मिथ्यात्व और भ्रान्ति में उतरीं ताकि उन्हें सत्य में बदला जा सके; इस मृत्यु में उतरीं ताकि उसे दिव्य जीवन में बदल सकें; इस सांसारिक दुःख में और उसके दुःसाध्य कष्ट और पीड़ा में उतरीं ताकि अपने परम आनन्द की तीव्रता से इनका रूपान्तर करके इनका अन्त कर सकें। उन्होंने अपने बच्चों के लिए गहरे और महान् प्रेम के कारण अज्ञान का लबादा पहनना स्वीकार किया, जन्म के प्रवेश-द्वार में घुसना स्वीकारा जो वास्तव में मृत्यु ही है। अन्धकार और मिथ्यात्व की शक्तियों के आक्रमणों और कष्ट देने वाले प्रभावों को सहने की, सृष्टि के दुःख-दर्द और यातनाओं को स्वीकारने की कृपा की क्योंकि उन्हें लगा कि केवल इसी उपाय से जगत् को ज्योति, आह्लाद, सत्य और अनन्त जीवन की ओर उठाया जा सकता है। यही वह महान् बलिदान है जिसे कभी-कभी 'पुरुष' का बलिदान कहा जाता है, पर अधिक गहरे अर्थों में यह

‘प्रकृति’ की आत्माहुति है, भगवती मां का बलिदान है।

CWSA खण्ड ३२, पृ.१४-१५, १७ —श्रीअरविन्द

दिव्य मां तथा उनके विभिन्न पहलू

मधुर मां, महासरस्वती चारों में सबसे छोटी क्यों हैं?

क्योंकि उनका काम सबसे अन्त में आया; इसलिए वे भी बिलकुल अन्त में आयीं। (*मौन*) वे इसी क्रम में अभिव्यक्त हुई हैं, यहां जो क्रम दिया गया है उसके अनुसार। ये रूप भगवती मां की विशेषताओं के जैसे हैं जो काम की आवश्यकताओं के अनुसार एक के बाद एक अभिव्यक्त हुए; और पूर्णता की आवश्यकता अन्त में थी, इसलिए वे सबसे छोटी हैं।

लेकिन ये चारों एक-दूसरे से स्वतन्त्र हैं न?

कुछ हद तक, लेकिन पूरी तरह नहीं। हमेशा वही चीज होती है। एक ऐसी स्वतन्त्रता होती है जो कभी-कभी पूर्ण प्रतीत होती है और, साथ-ही-साथ उन्हें जोड़ने वाला एक घनिष्ठ सूत्र भी होता है, यहां तक कि कह सकते हैं कि वह निरपेक्ष होता है। यहां, भौतिक जगत् में, केन्द्रीय चेतना हैं ‘महाशक्ति’। हां, तो उनमें हमेशा ही इन विविध रूपों की क्रियाओं को नियन्त्रित करने की शक्ति रही है—चाहे वे रूप कितने भी स्वतन्त्र क्यों न हों, और अपनी-अपनी अभीप्सा के अनुसार ही काम करते हों। और फिर भी वे नियन्त्रण कर सकती हैं, इस अर्थ में कि यदि...

उदाहरण के लिए, काली को लो। अगर काली हस्तक्षेप करने का निश्चय करती हैं और ‘महाशक्ति’—जिनमें स्वभावतः चीजों की ज्यादा पूर्ण और व्यापक दृष्टि है—देखती हैं कि हस्तक्षेप करने का समय ठीक नहीं है, या बहुत जल्दी है तो वे महाकाली पर दबाव डाल सकती हैं और उनसे कह सकती हैं: “शान्त रहो।” और तब वे शान्त रहने के लिए बाधित होती हैं; और फिर भी वे बिलकुल स्वतन्त्र रूप से काम करती हैं।

—‘श्रीमातृवाणी’ खण्ड ६, पृ. ३२९

श्रीमां की शक्ति

योग-शक्ति क्या है? यौगिक मनस्-शक्ति, यौगिक प्राण-शक्ति और यौगिक शरीर-शक्ति क्या हैं?

यौगिक चेतना में व्यक्ति हमेशा न केवल चीजों के बारे में, न केवल शक्तियों के बारे में बल्कि उस सचेतन सत्ता के बारे में भी अभिज्ञ हो जाता है जो शक्तियों के पीछे स्थित रहती है। वह इन सब चीजों के बारे में न केवल अपने अन्दर बल्कि विश्व के अन्दर भी सचेतन हो जाता है। एक शक्ति है जो इस नयी चेतना के विकास में सहयोग देती है और उसी के साथ विकसित होती हुई उसे पूर्ण बनाने में उसकी मदद करती है। वह शक्ति यौगिक शक्ति है। वह यहां हमारी आन्तरिक सत्ता के सभी चक्रों में कुण्डली मारे सोयी हुई है और तन्त्र में जिसे हम कुण्डलिनी शक्ति कहते हैं उसके आधार में होती है। वह हमारे ऊपर, हमारे मस्तक के ऊपर 'भागवत शक्ति' के रूप में भी होती है, लेकिन वहां कुण्डलित, अन्तर्लीन, सुप्त नहीं, बल्कि जाग्रत्, कुशल, समर्थ, परिवर्धित तथा विस्तृत होती है; वह वहां अभिव्यक्त होने के लिए प्रतीक्षारत है, इसी शक्ति के प्रति हमें अपने-आपको उद्घाटित करना है—यह है मां की शक्ति। मन में यह स्वयं को भागवत मनस्-शक्ति या वैश्व मनस्-शक्ति के रूप में प्रकट करती है और यह वह सब कुछ कर सकती है जो वैयक्तिक मन नहीं कर सकता; तब वह यौगिक मनस्-शक्ति होती है। जब वह उसी तरह प्राण या शरीर में अभिव्यक्त होकर क्रिया करती है तो वह यौगिक प्राण-शक्ति या यौगिक शरीर-शक्ति होती है। वह इन सभी में जाग्रत् होकर बाहर तथा ऊपर विस्फोट के साथ फूट सकती है, ऊपर से नीचे तक फैल सकती है या अवतरित होकर नीचे चीजों में निश्चित शक्ति बन सकती है; वह शरीर में उतर कर, वहां कार्य करती हुई, अपना राज्य प्रतिष्ठित कर सकती, चारों तरफ छा सकती, हमारे निम्नतम को ऊपर उच्चतम से जोड़ सकती तथा व्यक्ति को वैश्वभावापन्नता में या निरपेक्षता और उत्कृष्टता में उद्घाटित कर सकती है।

CWSA खण्ड ३२, पृ. १९२ —श्रीअरविन्द

दैनन्दिनी

अक्तूबर

१. तेरी जय हो प्रभु! सब विघ्नों पर विजय पाने वाले नाथ! तेरी जय हो! ऐसी कृपा कर कि हमारे अन्दर कोई भी चीज तेरे कार्य में बाधक न हो।

२. प्रश्न : जब मैं किसी रोगी के साथ सहानुभूति रखता हूं तो मैं स्वयं उसकी बीमारी के लक्षण अनुभव करने लगता हूं।
उत्तर : सबसे अच्छा उपाय है सत्य और सामञ्जस्य की दिव्य उपस्थिति को पुकारना ताकि वह अव्यवस्था और अस्तव्यस्तता के स्पन्दनों को बदल दे।

३. जब शारीरिक अव्यवस्था आये तो तुम्हें डरना नहीं चाहिये, तुम्हें उसका सामना साहस, शान्ति, भरोसे और इस निश्चिति के साथ करना चाहिये कि बीमारी एक मिथ्यात्व है और अगर तुम पूरे भरोसे के साथ, पूरी तरह भागवत कृपा की ओर पूर्ण अचञ्चलता के साथ मुड़ो तो वह कृपा इन कोषाणुओं में उसी तरह पैठ जायेगी जिस तरह वह सत्ता की गहराइयों में पैठती है, और स्वयं कोषाणु शाश्वत सत्य और आनन्द के भागीदार होंगे।

४. मेरे प्रभु, चेतना को स्पष्ट और यथार्थ बना, वाणी को पूरी तरह सच्चा बना, समर्पण पूर्ण हो, स्थिरता सम्पूर्ण और सारी सत्ता को प्रकाश और प्रेम के सागर में रूपान्तरित कर दे।

५. ईर्ष्या, स्वार्थपूर्ण असन्तोष और आहत दर्प तुम्हें भागवत रक्षण से बाहर खींचता है, चेतना के द्वार को विरोधी आक्रमणों के लिए खोल देता है। इन भ्रान्तिपूर्ण गतिविधियों को अपने अन्दर होने देने से इन्कार करके ही तुम विरोधी प्रभाव और उसके विपत्तिजनक परिणामों से छुटकारा पाने की आशा कर सकते हो।

६. सच्चे बनो, हमेशा सच्चे बनो, अधिकाधिक सच्चे बनो।
सच्चाई हर एक से यह मांग करती है कि वह अपने विचारों, अपने भावों, अपनी अनुभूतियों और अपने कामों में अपनी सत्ता के केन्द्रीय

सत्य के सिवा और कुछ न प्रकट करे।

७. सफलता में से गुजरना दुर्भाग्य में से गुजरने की अपेक्षा अधिक कठिन अग्नि-परीक्षा है।
सफलता की घड़ी में मनुष्य को अपने-आपसे ऊपर उठने में अधिक जागरूक रहना चाहिये।

८. हर एक व्यक्ति हमेशा प्रगति कर सकता है। हर चीज हमेशा प्रगति कर सकती है। मैं हमेशा सम्भव सुधार के लिए यह जानते हुए काम करती रहती हूं कि बड़ी-से-बड़ी कठिनाई हमेशा बड़ी-से-बड़ी विजय लाती है और मुझे विश्वास है कि इसके लिए तुम मेरे साथ हो।

९. हर रोज जागते समय हम पूर्ण उत्सर्ग-भरे दिन के लिए प्रार्थना करें।

१०. जो लोग भगवत्कृपा और सहायता के लिए अभीप्सा करते हैं उनके लिए कृपा और सहायता हमेशा प्रस्तुत रहती हैं और अगर उन्हें श्रद्धा और विश्वास के साथ लिया जाये तो उनकी शक्ति असीम है।

११. योग करने के लिए जो चीजें प्राप्त करना सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है उनमें से एक है भूतकाल के साथ आसक्ति से पिण्ड छुड़ाना।
बीती को बीत जाने दो, केवल तुम्हें जो प्रगति करनी है उसी पर केन्द्रित होओ, भगवान् के प्रति उस समर्पण पर केन्द्रित होओ जिसे तुम्हें चरितार्थ करना है।

१२. अपनी जीवन-पद्धति को सुधारने से ही तुम अच्छा स्वास्थ्य पाने की आशा कर सकते हो।

१३. इच्छा-शक्ति ही सब चीजों की जड़ है। तुम रोगी और दुःखी होना चाहते हो तो दुःख और रोग तुम्हें पकड़ लेते हैं। तुम बलवान् और सुन्दर और सुखी होना चाहते हो और सारा संसार तुम्हारी कान्ति से चमक उठता है। यह समस्त विश्व उस एकमात्र वैश्व इच्छा का परिणाम है जिसने अपने अन्दर बहु की सृष्टि करने का निश्चय करके अपने-आपको इन सब रूपों में रच लिया है जिन्हें तुम उसमें देखते हो।

१४. अवसाद या विद्रोह के क्षणों में अनुचित गतिविधि के आवेश में आकर कोई नया निश्चय नहीं करना चाहिये, बल्कि व्यावहारिक रूप में शान्त रहते हुए सामान्य दिनचर्या में लगे रहना चाहिये।

१५. अचञ्चल रहो। अपने-आपको अनासक्त रखने की कोशिश करो और

आवेश में आकर कार्य करने की समस्त सम्भावनाओं को रोकने के लिए साक्षी की तरह अवलोकन करो।

१६. वस्तुतः सभी चीजों में छिपी हुई सद्भावना अपने-आपको सभी स्थानों पर उस व्यक्ति के आगे प्रकट करती है जो अपनी चेतना में सद्भावना लिये रहता है। यह अनुभव करने का रचनात्मक तरीका है जो सीधा भविष्य की ओर ले जाता है।

१७. सुख-शान्ति उतनी ही संक्रामक है जितनी उदासी—सच्ची-गहरी सुख-शान्ति का संक्रमण लोगों तक पहुंचाने से ज्यादा उपयोगी और कोई चीज नहीं होती। खुश रहने की कोशिश करो—तुम तुरन्त दिव्य प्रकाश के निकट होओगे।

१८. यह बहुत अच्छा है कि तुम अपनी प्रकृति की भूलों और विकारों के बारे में सचेतन हो गये हो। एक बार सचेतन हो जाने पर उनमें से बाहर निकल आना व स्वभाव को बदलना हमेशा सम्भव होता है।

१९. प्रश्न : वर्तमान बढ़ते हुए संघर्ष में हमारी वृत्ति कैसी होनी चाहिये?
उत्तर : भागवत कृपा में श्रद्धा और पूर्ण विश्वास।

२०. भागवत कृपा हमेशा तुम्हारे साथ है। नीरव मन से अपने हृदय में एकाग्र होओ और निश्चय ही तुम उस पथ-प्रदर्शन और सहायता को पा लोगे जिसके लिए तुम अभीप्सा करते हो।
उन सबके लिए कृपा और सहायता हमेशा मौजूद रहती हैं जो इनके लिए अभीप्सा करते हैं और जब इन्हें श्रद्धा और विश्वास के साथ ग्रहण किया जाये तो इनकी शक्ति असीम होती है।

२१. साधक भगवान् से ही शान्ति पाता है, ऐसी शान्ति जो बाहरी परिस्थितियों से एकदम स्वतन्त्र होती है। भगवान् की ओर अधिक मुड़ो, वास्तविक आन्तरिक शान्ति के लिए अभीप्सा करो और तुम्हें बिना विघ्न-बाधा के अपना काम चलाते रहने के लिए काफी शान्ति मिल जायेगी।

२२. विद्यालय विद्यार्थियों को सोचने, अध्ययन करने, प्रगति करने और हो सके तो बुद्धिमान् बनने की तैयारी करवाने के लिए है—यह सब केवल विद्यालय में ही नहीं, **सारे जीवन-भर** चलते रहना चाहिये।

२३. सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण बात जो बच्चों को सिखानी चाहिये वह है, सच्चे और निष्कपट होने की परम आवश्यकता।

समस्त असत्य को, चाहे वह कितना भी कम क्यों न हो, अस्वीकार करो।

उन्हें सदा प्रगति करते रहना भी सिखाना चाहिये क्योंकि जैसे ही कोई प्रगति करना बन्द करता है, वैसे ही वह पीछे गिरता है और यह क्षय का आरम्भ है।

२४. अगर तुम किसी दिन अपने-आपको आध्यात्मिक जीवन के उपयुक्त बनाना चाहते हो तो तुम्हें सबसे पहले प्राण की चञ्चलता से बचना चाहिये। जो काम करना हो उसे शान्त मन से करना, उसे भगवान् की पूजा के रूप में करना और अहंकार तथा प्राणिक कामना से मुक्त होने का प्रयास करना ही अपने-आपको तैयार करने का उत्तम पथ है।

२५. तुम्हें संसार भर का सारा मानसिक ज्ञान प्राप्त हो सकता है और फिर भी तुम प्राणिक कठिनाइयों का मुकाबला करने में असमर्थ हो सकते हो। सच्ची सहायता देने वाली चीजें हैं : साहस, श्रद्धा, प्रकाश के प्रति सच्ची निष्ठा, विपरीत सुझावों और विरोधी वाणियों का परित्याग। उसके बाद ही ज्ञान प्रभावशाली हो सकता है।

२६. प्राणिक गतिविधियों और रचनाओं के विषय में सावधान रहो—जब तुम उन्हें स्वीकृति देते हो तो तुम एक खतरनाक ढलान पर खड़े होते हो।

२७. अवसाद किसी भी तरह से या कहीं से भी क्यों न आया हो उसके साथ एक ही बर्ताव करना चाहिये—वह है, उसे बाहर फेंक देना।

२८. अभीप्सा की लौ इतनी सीधी और इतनी तीव्र होनी चाहिये कि कोई बाधा उसे विलीन न कर सके।

२९. अगर तुम पूरी तरह अचञ्चल और निर्भय रहो तो कोई गम्भीर चीज घटित नहीं हो सकती।

३०. संकट के समय पूर्ण अचञ्चलता की आवश्यकता होती है।

३१. अगर तुम अपनी श्रद्धा को अटल और अपने हृदय को हमेशा मेरे प्रति खुला रखो तो चाहे जितनी बड़ी कठिनाइयां क्यों न आयें, वे तुम्हारी सत्ता को अधिक पूर्ण बनाने में योगदान देंगी।

एक साधक के साथ पत्र-व्यवहार

(ये पत्र एक ऐसे साधक को लिखे गये थे जो उन्नीसवीं शती के तीसरे दशक में श्रीअरविन्दाश्रम में दांतों के डॉक्टर थे और १९३८ से १९५० तक श्रीअरविन्द की व्यक्तिगत सेवा में रहे थे। पूरा पत्र-व्यवहार अंग्रेजी में हुआ था।)

> *समर्पण के बारे में बात करना आसान, सचमुच बहुत आसान है। समर्पण के बारे में, उसकी सभी जटिलताओं के साथ, सोचना इतना आसान नहीं है, जरा भी आसान नहीं है। लेकिन सच्चे आत्म-समर्पण के आरम्भ को भी सिद्ध कर पाना—ओह! कितना कठिन है, मेरी मां।*
>
> *मैं जानता हूं मेरे अन्दर बहुत-सी गलत चीजें हैं; लेकिन कोई खास आधारभूत गड़बड़ भी होनी चाहिये। मां, वह क्या है?*

केवल तुम्हारे लिए ही कोई खास बात नहीं है। एक ही कठिनाई सभी मनुष्यों में मौजूद है—भौतिक मन का घमण्ड और उसका अन्धापन।

८ जुलाई १९३५

> *एक पुरानी हिन्दू मान्यता है कि हमें उत्तर की ओर सिर करके नहीं लेटना या सोना चाहिये। क्या इसका कोई वास्तविक अर्थ है, मां?*

इस विषय में बहुत-सी बातें कही जा चुकी हैं, लेकिन जहां तक मेरा अनुभव है, मैं इस मान्यता को बहुत महत्त्व नहीं देती।

२४ मार्च १९३६

एक प्रार्थना :

"हे प्रभो, मेरी समस्त सत्ता को जगा ताकि वह तेरे लिए आवश्यक यन्त्र, पूर्ण दास हो सके।"

२७ मार्च १९३६

क्या 'क' ने आपसे बात की है कि उसने मेरी जन्मपत्री में शनि का प्रभाव देखा है। मैं अपने जन्मदिन पर इस बारे में आपसे पूछना भूल गया।

हां, उसने मुझसे इस विषय में बात की थी। लेकिन तुम्हें जानना चाहिये कि योग हमें जन्मपत्री की अधीनता से मुक्त कर देता है। जन्मपत्री हमें भौतिक जगत् के सम्बन्ध में हमारी क्या स्थिति है, यह बतलाती है, लेकिन साधना द्वारा हम उस जगत् की दासता से छुटकारा पा लेते हैं।

१४ सितम्बर १९३६

मैं जानता हूं कि आजकल मेरे पास जो काम आता है वह बहुत कम होता है; फिर भी मैं उसका विवरण देता रहता हूं क्योंकि एक बार आपने ऐसी इच्छा प्रकट की थी।

हां, मैं तुमसे तुम्हारी कॉपी पाना पसन्द करती हूं। यह भौतिक रूप से सम्पर्क बनाये रखने में सहायक है।

५ *दिसम्बर १९३६*

मैं लेते-लेते और बदले में कुछ नहीं देने से थक जाता हूं। यह अशोभन-सी बात है, लेकिन मैं नहीं जानता कि मैं क्या करूं सिवाय इसके कि आपसे प्रार्थना करूं कि मुझे स्वयं मुझसे मुक्त कीजिये।

अपनी मां से तुम हमेशा ले सकते हो, यह बिलकुल स्वाभाविक है, विशेषकर जब तुम्हें चीजें पूरे हृदय से दी जाती हैं। क्या मैं तुम्हारी मां नहीं हूं जो तुमसे प्रेम करती है?...

३ जनवरी १९३७

तुम अपने चचेरे भाई से कह सकते हो कि मैं सभी कठिनाइयों और कष्टों से निकलने की बस एक ही तरकीब जानती हूं; वह है भगवान् के प्रति पूर्ण आत्मदान और समर्पण।

१३ नवम्बर १९३७

शाश्वती मां,

मैं अपनी चेतना में बहुत नीचे चला गया हूं और आप मुझे बहुत अधिक दूर मालूम होती हैं। आप अपनी समस्त सृष्टि की अनन्त मां हैं और आपके बहुत-से बच्चे हैं। लेकिन आपकी कृपा ही हमारा एकमात्र आश्रय है और हम रक्षा के लिए आपके सिवा और किसकी ओर मुड़ें? अब आपकी कृपा अधिक प्रत्यक्ष रूप में प्रकट हो ताकि मेरी पार्थिव आंखें, उन पर जो मोटा, धूमिल पर्दा पड़ा है उसके बावजूद, उसकी क्रिया को कुछ थोड़ा-बहुत देख और समझ सकें। आपकी कृपा मेरे हृदय-कमल को पूरी तरह खिला सके ताकि मैं आनन्दमय सौन्दर्य, साधुता और मधुरिमा की पूर्ण महिमा में, आपकी आत्मा की मोहक उपस्थिति के दर्शन से धन्य हो सकूं ताकि मेरी सभी अशुद्धियां धुल जायें, मन की बेचैनी और आवेशों के तूफानी उभार को चैन मिल जाये।

मैं अपनी आत्मा को आपके संरक्षण में सौंपता हूं।

फिर भी मैं अनुभव करती हूं कि तुम मेरे अधिक निकट हो और मैं तुम्हारे अन्दर एक ऐसा उद्घाटन देखती हूं जो पहले कभी न था। मुझे ऐसा लगता है कि तुम जल्दी ही, सतह की ऊपर से दीखने वाली शुष्कता के पीछे, सचेतन प्रेम की सदा प्रज्वलित ज्वाला को खोज निकालोगे।

आशीर्वाद।

४ जुलाई १९३८

'ख' ने मुझसे कहा है कि आपके पास मेरे विरुद्ध यह शिकायत आयी है कि मैं लोगों की भावनाओं को ठेस पहुंचाता हूं।

मैं जानती हूं कि केवल दुर्बल ही शिकायत करते हैं। सबल लोग कभी शिकायत नहीं करते क्योंकि उन्हें ठेस नहीं लग सकती। इसलिए मैं शिकायतों को बहुत महत्त्व नहीं दिया करती।

मेरे प्यारे बालक को प्रेम और आशीर्वाद।

९ अक्तूबर १९३८

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १६, पृ. २३१-३४

सत्य निष्ठा

शैशव से ही मनीष को सिखाया गया था कि सम्पूर्ण भूमण्डल की देख-भाल स्वर्ग में विराजमान परमात्मा करते हैं। हर एक वस्तु चाहे कितनी नगण्य तथा तुच्छ क्यों न प्रतीत होती हो उनकी दिव्य दृष्टि में अपना विशेष महत्त्व रखती है।

आज दस साल के बाद भी उसे अपनी मां के शब्द याद थे, उसकी मधुर आवाज आज तक उसके हृदय में गूंज उठती थी, "बेटे, जीवन में अनेक कठिनाइयां आयेंगी लेकिन कदापि हिम्मत न हारना। क्योंकि जो कुछ होता है हमारे हित के लिए ही होता है; जो हमारी दृष्टि में अहित-सा लगता है वह भी वास्तव में भागवत कृपा का ही एक रूप होता है। उनके हर एक कार्य के पीछे एक कारण होता है।"

मनीष तो अभी शिशु मात्र था, इसलिए उसने मां के वचन को परम सत्य मान लिया। उस समय बिना विरोध के, बिना सोच-विचार के उसने मान लिया कि भगवान् रक्षक हैं, कि मुसीबत में वे उसकी प्रार्थना सुन लेंगे और निस्सन्देह उसकी सहायता करने के लिए उपस्थित होंगे।

जब कभी मनुष्य पूर्ण रूप से अपने-आपको भगवान् के सम्मुख अर्पित कर देता है, उनकी सर्वव्यापिनी शक्ति में पूर्ण रूप से विश्वास करता है तो क्या उसका जीवन कठिन दिखायी देता है? नहीं, क्योंकि भगवान् में पूरी श्रद्धा रखना एक ऐसा अस्त्र है जिसके होते हुए हमें किसी प्रकार की हानि नहीं हो सकती। अतः, मनीष की आंखों में जीवन एक सुखमय यात्रा था। रोज सवेरे स्कूल जाने के लिए निकलता तो शाम तक न लौटता। फिर लौट कर खाना खाकर दादा से कहानियां सुनता या आंगन में पड़ोस के बच्चों के साथ खेलता। उसकी दृष्टि में जीवन प्यार, खेल और रसीली कहानियों से ही रंगा था।

कितना सौभाग्यशाली है वह व्यक्ति जो गरीब होते हुए भी आनन्दित रह सकता है। बच्चों के सिवाय इस दुनिया में ऐसे लोग दुर्लभ हैं।

क्या मनीष को दरिद्रता का अर्थ मालूम था? शायद, कुछ हद तक वह उसके प्रति सचेत था। जैसे अपने जन्मदिन पर वह कितने ही सुन्दर उपहारों के सपने देखा करता था! लेकिन मिलता था एक झुनझुना। उसके

सब रंग-बिरंगे सपने चूर-चूर हो जाते थे, उसके छोटे मासूम हृदय में दुःख भर आता था और उसकी आंखें छलछला उठती थीं। लेकिन अगले ही क्षण वह सोचता, "मां मुझे बहुत कुछ देना चाहती हैं लेकिन दे नहीं पातीं। कोई बात नहीं। मैं इसी से सन्तुष्ट रहूंगा। शायद एक दिन भगवान् मेरी प्रार्थना सुन लें।"

लेकिन समय बीतता गया। महीने वर्षों में परिवर्तित हो गये। फिर भी भगवान् ने उसकी प्रार्थना नहीं सुनी, उसके सपने बस सपने ही रह गये।...

इस बीच मनीष की एक अमीर लड़के से दोस्ती हो गयी। वह उसे भगवान् की बातें सुनाने का प्रयास करता तो रमेश हंस कर कहता, "अरे बेवकूफ! भगवान् जैसा वास्तव में कोई है ही नहीं। मनुष्य की कल्पना ने ही उसे बना दिया है। अच्छा, तू ही बता, क्या भगवान् से प्रार्थना करने पर धन-दौलत मिल सकती है? क्या किसी मुर्दे को वे जिन्दा कर सकते हैं?"

और फिर वह उसे अपने घर पर बुलाता और विविध प्रकार के स्वादिष्ट पकवान खिलाता। और स्वाभाविक रूप से मनीष क्रमशः अपनी झोंपड़ी की रमेश के महल से तुलना करने लगा। उसके अन्दर एक आवाज कहती, "मनीष, यह निष्ठा छोड़ दे। बड़े होकर धन कमाना, चैन से रहना।"

लेकिन फिर दूसरी आवाज कहती, "मनीष, अपनी मां की बातें याद रख। भौतिक सुख ही सब कुछ नहीं है। भगवान् में श्रद्धा मत छोड़। वे हरदम तेरी सहायता करेंगे।"

मनीष ने रमेश का संग छोड़ना ही अच्छा समझा। लेकिन आखिर एक जवान लड़का इन सब आकर्षक सुखों से कितने दिन दूर रह सकता था?

लेकिन फिर अचानक एक घटना घटी जिससे मनीष में जो थोड़ी-बहुत निष्ठा बची थी वह भी चली गयी। एक दिन स्कूल से घर लौटने पर देखा कि मां बहुत बीमार पड़ी है। उसकी बुरी हालत देख कर वह डर गया और दौड़ा-दौड़ा चिकित्सक के पास गया। लेकिन उसका इलाज सम्भव नहीं था। अन्ततः उसने प्रार्थना की शरण ली। आंखें मूंद कर विनती की, "हे भगवान्, मेरी मां की रक्षा करना। यही मेरी एकमात्र आकांक्षा है।"

लेकिन ऐसा लगा कि भगवान् ने उसकी प्रार्थना नहीं सुनी।...

इससे मनीष को बड़े जोर का धक्का लगा, उसके मन में विद्रोह-भरा प्रश्न उठा, "भगवान् दयालु कहां हैं? उन्होंने उंगली तक नहीं उठायी मेरी

मां की रक्षा के लिए। कितने निष्करुण हैं वे!"

वेदना-पीड़ित मनीष नदी किनारे जा बैठा। सन्ध्या की बेला थी। भगवान् भास्कर ने अपनी यात्रा पूरी कर ली थी और अस्ताचल के पीछे विलुप्त होने-होने को थे। उनकी कोमल गुलाबी रश्मियां अभी पृथ्वी पर मंडरा रही थीं जैसे किसी पुष्प के मनोहर आनन से मदान्ध होकर भ्रमर मंडराते हैं। चारों ओर एक पवित्र शान्ति छायी हुई थी।

सहसा उसके शोकपूर्ण हृदय में एक मधुर आवाज गूंज उठी—"मनीष, क्या तूने बचपन से पली निष्ठा को क्षणमात्र में त्याग दिया? जीवन के सभी द्वन्द्व आपस में विपरीत भले दीखते हों पर वास्तव में एक ही भागवत कृपा के भिन्न-भिन्न रूप होते हैं। मनीष, नूतनता का जन्म होने के लिए पुरातनता को जाना पड़ता है, ज्ञान की प्रतिष्ठा के लिए अज्ञान जगह देता है, प्रकाश के आते ही अन्धकार छंट जाता है, उसी तरह नवजीवन के आगमन से पहले मौत को आना पड़ता है। दुःखी मत होओ, मनीष! जीवन के संग्राम में शूरता से लड़ना पड़ता है। बस, एक घटना से इतने हताश हो गये? देखो, पूरी सृष्टि कितनी सुन्दर है। मनुष्यों के लिए पितामह ब्रह्मा ने इतने कष्ट सह कर सत्य, शिव और सुन्दर का सर्जन किया है। क्या तुम उनकी कला का रसास्वादन नहीं करोगे? क्या उनको अपनी कृतज्ञता अर्पित नहीं करोगे?"

यह सुन शोक में विलीन मनीष ने आंखें खोलीं और चारों ओर दृष्टि फेरी। ऊपर, वृक्ष की शाखा पर बैठा विहंग संगीत-लहरी बहा रहा था। नदी के शीतल जल पर द्वाभा रह-रह कर शोभा दे रही थी। तट पर हरी-भरी घास फूलों से खुशबू चुराते मन्द-मन्द बहते पवन के स्पर्श-मात्र से पुलकित हो रही थी, छोटे-छोटे सफेद फूल साकार ज्योत्स्ना-से नजर आ रहे थे! कैसी रौनक थी!

अचानक मनीष का सारा शोक भाप बन कर उड़ गया और उसकी जगह आशा तथा अर्चना की चिनगारी जाग उठी। अभीप्सा और कृतज्ञता की अंजलि बांध उसने ऊपर की ओर ताका तो लालिमा से रञ्जित गगनमण्डल की पवित्र शान्ति में गूंज उठे ये शब्द : सत्यम्... शिवम्... सुन्दरम्...।

—स्व. रवीन्द्रजी

'नयी कोंपलें' :

एक चित्रकार का कर्मस्थल

कलकत्ते का शोर-शराबा, उसकी पतली गलियों की भीड़, मुसलमानी ढाबे से बिरियानी की शाही खुशबू और दूकानदारों और खरीददारों की दैनिक बहस—यही सब इमारतों के इस जंगल, कलकत्ते को जीवन देते हैं। पर इस शोर के ताण्डव में एक ही एकाग्र 'महेश' बैठे रहते हैं—वे हैं हमारे चित्रकार, इस बाजार में यही एक कमरा है जिसमें सैकड़ों आवाजें घुसती तो हैं पर निकलती एक भी नहीं, यहां फर्श पर धूल का अनदेखा कालीन बिछा हुआ है, एक खिड़की हमारे शिल्पी के देवालय को रोशन करती है। इस खिड़की के दो ओर दो मैले परदे टंगे हुए हैं। दीवार को संवारते हुए शिल्पी के चित्र शिल्पी की कुशलता का निदर्शन देते हैं, ये सारी तस्वीरें दुनिया के मशहूर स्थानों और उत्सवों को दर्शाती हैं, और ये रंगों की भाषा में कई सारी कहानियां सुनाती हैं, इन तस्वीरों को देख कर मुझे उनकी रहस्यमयी दुनिया में जाने का जी करता है : कोई चित्र वेनिस की फूलों से सजी कश्तियों को दिखाता है, तो कोई शांघाई की ऊंची इमारतों को या फिर मोरक्को के मुसलमानी बाजारों को और अन्त में कई सारे चित्र भारतीय ग्रामीण दृश्यों को दिखलाते हैं, और एक अद्‌भुत 'पोर्टरेट' भी है—उसकी प्रेमिका का। यह तो हुआ उसके चित्रफलक को रंगों का जामा पहनाने का काम, पर उसका जीवन इतना भी साफ-सुथरा नहीं है। पहले ही मैंने फर्श के बारे में बता दिया है, अब कमरे में इधर-उधर देखते हुए जान पड़ता है कि यह शिल्पी कुछ ज्यादा ही खोया हुआ है। रंगीन पानी का एक घड़ा एक कोने में खड़ा रहता, जो न जाने कितने मच्छरों को जन्म दे चुका होगा, इधर-उधर कोनों में, मेज पर रंगों की बोतलों का मेला सजा हुआ है। पूरी मेज पर ब्रुश बिखरे हुए हैं—कई तो रंगों में पड़े-पड़े खराब हो गये हैं, और बहुत सारी चीजें अपने उचित स्थान से वञ्चित हैं, कोई भला कर भी क्या सकता है, ये हैं हमारे भोले, कुंवारे, रंगीन सागर में तैरने वाले चित्रकार।

—आकाश साहा

बेटे के नाम चिट्ठी

(आंसुओं की लड़ी में पिरी हुई यह कहानी पहले सन् २००४ में पुरोधा के जुलाई-अंक में छपी थी। आज दोबारा पढ़ने पर भी यह आंखों में नमी का वही ज्वार उठा लाती है... —सं.)

चार सन्तानों के माता-पिता एडवर्ड और डॉना टेलर को पता लगा कि वे फिर से मां-पिता की भूमिका निभाने वाले हैं और जब उन्होंने अपने बच्चों को यह खुशखबरी सुनायी तो नौ साल का बेटा नेड खुशी से झूम उठा—अपने भावी भाई के जन्म से पहले ही उसके साथ खेलने, उसे खिलाने की नयी-नयी योजनाओं से अपना छोटा-सा दिमाग भरने लगा।

अगस्त १९६४ में जैकी का जन्म हुआ—"एक और बहन"—नेड के सारे सपने चकनाचूर हो गये! "लड़कियां भला किस काम की होती हैं" —उसने मुंह बिचका कर धीमी आवाज में कहा। पिता से बेटे की निराशा कैसे छिपी रहती भला, उन्होंने जब अस्पताल में पत्नी से बेटी होने पर नेड की प्रतिक्रिया का जिक्र किया तो डॉना ने अपने बेटे को एक चिट्ठी लिखी—"मेरे प्यारे बेटे, मैं जानती हूं कि तुम और एक बहन नहीं चाहते थे। अपने साथ खेलने के लिए भाई पाने की कामना तुम्हारी पूरी न हो सकी, लेकिन बेटे, यह भगवान् के यहां निश्चय होता है। अगर उन्होंने तुम्हें उपहार-स्वरूप एक और बहन दे दी तो खुशी मनाओ। सोचो कि वह कितना नेक और दयालु ईश्वर है जिसने हमारे बीच एक स्वस्थ और सुन्दर बेटी का तोहफ़ा भेजा। बेटे, चूंकि तुम मेरे 'एकमात्र बड़े बेटे' हो इसलिए अब तुम जिम्मेदार हो गये हो, मैं आशा करती हूं कि तुम अपनी इस खास भूमिका को बखूबी निभाओगे, और वह है—आज से तुम जैकी की पूरी जिम्मेदारी अपने ऊपर ले लो—क्या तुम अपनी बहन के विशेष संरक्षक बनोगे? जब वह 'किंडरगार्टेन' जायेगी तो कोई उस पर धौंस जमाने की कल्पना भी नहीं करेगा क्योंकि सब जानते होंगे कि जैकी के पास एक ऐसा देवदूत है जो अच्छों के लिए फरिश्ता तो बुरों के लिए हौवा भी बन सकता है। वह है उसका "बड़ा भाई"। बाकी बातें मैं तुमसे मिलने पर समझाऊंगी। जैकी के "बड़े भाई" को ढेरों प्यार

तुम्हारी मां

नेड ने चुपचाप वह चिट्ठी अपने पास रख ली। जैकी जब घर पर आयी तो सभी बहनों में उसे देखने, छूने, पकड़ने की होड़ लग गयी। मूक दर्शक बना बैठा रहा तो केवल नेड। न मां ने पहल की, न पिता ने उसे बहन को लेने के लिए कहा। पहला दिन यूं ही बीत गया।

अगले दिन से नेड अपने विद्यालय के गृहकार्यों, पिआनो, संगीत और 'स्काउट'-शिविरों में इतना डूब गया कि उसे घर पर रहने का मौका ही कम मिलने लगा। और फिर गृहकार्य, खेलों और संगीत में किसी लड़की की क्या जरूरत थी? वह भी एक नन्हीं-सी बच्ची की??

लेकिन फिर भी, जब-जब वह घर पर रहता, अपनी छोटी-सी बहन के कमरे में ताक-झांक जरूर कर लेता, धीरे-धीरे कमरे में उसका प्रवेश भी होने लगा और एक दिन वह मां से बोल उठा, "मां, जब-जब मैं इसके पास आता हूं इसे रोता ही पाता हूं... क्या दुःख है इसे भला?"

"दुःख यह है कि इसका भाई इसके पालने को कभी झुलाता नहीं, इसे प्यार से पुचकारता तक नहीं।" मां हंस कर बोलीं।

बहन के पालने का स्पर्श करते ही मानों जादुई छड़ी फिर गयी। सचमुच बच्ची का रोना बन्द हो गया। मां आंखों-ही-आंखों में मुस्कुरा उठीं। और अब तो रोज का नियम बन गया कि घर में घुसते ही नेड सीधा जैकी के कमरे में जा उसके पालने को झुलाता, उससे बतियाता और प्यारी-सी बच्ची अपने छोटे-छोटे हाथ-पांव हवा में उछाल-उछाल कर हंसती, मुस्कुराती।

जब जैकी घुटनों के बल चलने लगी तो जहां कहीं नेड को देखती, किलकारी मार कर उसकी ओर बढ़ती। भाई की गोदी में ही बैठ कर उसने पहली बार पिआनो के स्वरों के ऊपर हाथ मारा था और एक साथ कई स्वर ऐसे गूंजे कि गूंज उठी साथ-साथ सारे घर की हंसी भी। और कुछ ही दिनों में वह चमत्कार हो गया जिसकी आशा मां-पिता ने की थी—नेड अपनी छोटी बहन से पूरी तरह जुड़ गया था। उसे लगने लगा कि घर में वह सबसे छोटा सदस्य नहीं है, उसके कन्धों पर छोटी बहन की पूरी-पूरी जिम्मेदारी है।

लेकिन नियति नेड के कन्धों पर झुकी हुई थी... सन् १९६७ में इधर जैकी तीन साल की हुई, उधर नेड बीमार पड़ गया। और बीमारी भी ऐसी

कि उसे घर पर, औरों से अलग रहने का आदेश मिल गया—पीलिया ने उसे जकड़ लिया था। नेड बहुत रोया-धोया, चिकित्सकों को जी भर कर कोसा उसने, क्योंकि अगले महीने उसे अपने विद्यालय के 'स्काउट-कैम्प' में प्रमुख भूमिका निभानी थी, संगीत के सम्मेलन में भाग लेना था। खैर, चिकित्सकों के यह कहने पर कि एक महीना पूरा आराम कर लेने के बाद वह अपने सभी कार्यक्रमों में भाग ले सकेगा, नेड उछल पड़ा। और इस खुशी के पीछे छिपी थी यह खुशी कि वह अपनी छोटी बहन को अधिक देख पायेगा, भले ही उसके कमरे में जाने की मनाही हो, लेकिन दूर से वह उसे पा सकेगा! और छोटी बहना भी यह समझ गयी कि उसका भाई दिन-रात घर पर ही रहेगा। वह ठुमकती हुई अपने भाई के कमरे के सामने जाती, अगर बन्द दरवाजा देखती तो तुतलाती जबान में कहती —खोलो, अपने मन्दिर का दरवाजा खोलो भैया—और नेड खिड़की के जंगले पर आ खड़ा होता और फिर दोनों न जाने दुनिया-जहान की क्या-क्या बातें करते, वे ही जानें... लेकिन समय दोनों का अच्छा कट रहा था।

लेकिन धीरे-धीरे नेड का पेट फूलने लगा। चिकित्सकों की चिन्ता माता-पिता से छिप न सकी। महीने में ठीक होने की बजाय तो उसे अस्पताल में दाखिल करवाना पड़ा। छोटी-सी जैकी का दुःख सबसे गहरा था—उसके मन्दिर का दरवाजा बन्द ही रहता। माता-पिता, बहनों के होते हुए भी वह घर में इधर-उधर भटकती, चिड़चिड़ी रहती।

नेड की तबीअत बिगड़ती चली गयी, पीलिया रोग ने न जाने कैसा मोड़ ले लिया कि चिकित्सकों के लिए वह अबूझ पहेली बन गया। न जाने दिन में कितने परीक्षणों से उसे गुजरना पड़ता। एक दिन वह मां से पूछ बैठा—"मां, मुझे अस्पताल में कब तक रहना होगा?"

"बस, कुछ ही दिनों तक बेटे, जब तक कि तुम अच्छे नहीं हो जाते।" मां उसका गाल सहलाते हुए बोलीं।

पल भर सोचने के बाद उसने फिर पूछा—"और मां, जैकी 'किंडरगार्टेन' जाना कब शुरू करेगी?"

"बस कुछ ही महीनों में," मां बोलीं।

नेड चहक उठा—"बहुत बढ़िया मां, मेरे ख्याल से उसे पहले दिन

'किंडरगार्टेन' पहुंचाने मुझे ही जाना चाहिये। क्यों न?"

"हां, बेटे, बिलकुल ठीक। आखिर तुम्हीं तो हो उसके संरक्षक।" मां ने नेड को उसकी भूमिका याद दिलायी।

गर्व से नेड की कमजोर छाती फूल उठी!

लेकिन... भाग्य अपना उलटा पांसा फेंक चुका था। चिकित्सा-जगत् की भरपूर कोशिशों के बावजूद दिन-पर-दिन नेड के शरीर में जुड़ते गये 'ट्यूब' यही दर्शा रहे थे कि मशीनों के सहारे वह जी रहा है। उसका यकृत बेकार होता चला जा रहा था... आखिर १९६७ की नवम्बर में वह छोटा-सा पंछी अपनों को अकेला छोड़, दूर गगन में विलीन हो गया...।

परिवार पर दुःख का जो पहाड़ टूटा उससे कई गुना भार उस छोटी-सी बहन के दिल और दिमाग पर छा गया जो जीवन और मृत्यु दोनों में से किसी शब्द का अर्थ न समझती थी! घर-भर की जान, सवा तीन साल की वह गुड़िया जैसे निर्जीव, पत्थर-सी बन गयी थी। सूनी-सूनी आंखों के साथ कभी भाई के कमरे के दरवाजे पर खड़ी रहती तो कभी चुपचाप उसके चित्र को निहारती रहती...।

समय का मलहम देर-सवेर सभी घावों को कुछ हद तक भर देता है और इस परिवार में जब घाव पर समय की पपड़ी आ रही थी कि अचानक वह नासूर बन बैठा।

नेड की मृत्यु के डेढ़ साल बाद टेलर परिवार के पास एक चिट्ठी आयी जिसने उनके होशो हवास गुम कर दिये। यह चिट्ठी ऐसे व्यक्ति से आयी थी जिनके नाम से परिवार परिचित न था, लेकिन न्यूयॉर्क के "एलबर्ट आइंस्टाइन कॉलेज ऑफ़ मेडिसिन" के चिकित्सक हरबर्ट, टेलर परिवार को एक तरह से भली-भांति जानते थे। परिचय की कड़ी थी उनका दिवंगत बेटा नेड। नेड की मृत्यु के कारण का पता लगाने के लिए डॉ. हरबर्ट अपने दल के साथ उसके मृत शरीर के लिए ऊतकों पर काम कर रहे थे कि उन्हें एक ऐसी विरल बीमारी का पता लगा जिसमें माता-पिता के शरीर के किसी दोष के कारण उनके बच्चे 'विल्सन डिज़ीज़' नामक रोग की पकड़ में आ सकते हैं जिसमें यकृत में तांबे की मात्रा बढ़ती चली जाती है और यकृत बेकार हो जाता है। नेड इसी रोग का शिकार बन गया था। अब डॉ. हरबर्ट को यह चिन्ता थी कि कहीं टेलर

परिवार को अपने किसी और बच्चे से हाथ न धोना पड़े।

चिट्ठी परिवार पर वज्र बन कर गिरी! साथ ही यह भी लिखा था, "यह जरूरी नहीं है कि सभी बच्चे इसका शिकार हों, आपकी सभी बच्चियों का हम परीक्षण करना चाहेंगे...।"

अगले दिन सारा परिवार अस्पताल में मौजूद था। परीक्षण की रिपोर्ट आने तक न किसी के मुंह में एक कौर गया, न हलक में एक बूंद!

आखिर डॉ. हरबर्ट रिपोर्ट के साथ आ खड़े हुए। मानों सबके दिल धड़कने बन्द हो गये। उन्होंने बतलाया कि टेलर की पहली तीन बेटियां इससे पूरी तरह मुक्त हैं लेकिन सबसे छोटी बेटी जैकी के शरीर में वह तत्त्व मौजूद है जो उसे मृत्युजाल में फंसा सकता है। सबसे बड़ी बात यह थी कि रोग की शुरुआत ही हुई थी, और डॉ. हरबर्ट के दल ने ऐसी दवाइयों की खोज कर ली थी जिनसे रोगी के शरीर में तांबे की अधिकता को निकाल कर, आहार के परहेज से उसे स्वस्थ रखा जा सकता था। हरबर्ट ने कहा—"आप लोग चिन्ता न करें। कुछ दवाइयों के सहारे जैकी बिलकुल सामान्य जीवन जी सकेगी, समय-समय पर मैं उसकी जांच भी करता रहूंगा।"

चिकित्सक और उसके दल को धन्यवाद देने के लिए टेलर दम्पति के पास शब्द नहीं, हृदय था।

घर लौटते समय, जैकी गाड़ी में आराम से सो रही थी, माता-पिता और बहनों की चर्चा का विषय बस एक ही था "जैकी और नेड।" तभी पिता का स्वर सुनायी दिया—"सचमुच अपनी जैकी को हमारे नेड ने ही बचाया। उसके शरीर के ऊतकों के शोध के बिना जैकी की यह बीमारी कभी पकड़ में न आती...।"

गाड़ी में सन्नाटा उतर आया। पत्नी ने धीमे स्वर में पति से कहा—"एडवर्ड, याद है तुम्हें उस चिट्ठी की जो मैंने जैकी के जन्म पर अस्पताल से नेड को लिखी थी?"

"खूब अच्छी तरह डॉना, वह तो उसकी धरोहर थी।" पति ने जवाब दिया।

उस शाम डॉना ने अपने दिवंगत बेटे को एक और चिट्ठी लिखी—"मेरे बेटे, मां ने तुम्हें जैकी की जिम्मेदारी की हिदायत दी थी, उसे कितनी

बखूबी निभा रहे हो तुम। बेटे, जैकी के 'किंडरगार्टेन' के सफर में साथ देने की बजाय तुम अपनी सारी जिन्दगी का साथ ही उसे दे बैठे। मां अपने बेटे को धन्यवाद नहीं दिया करती, लेकिन आज यह मां इतना जरूर कह सकती है कि अब अपने आंसुओं के बहाव में मैं तुम्हारे बलिदान की गरिमा को कभी न बह जाने दूंगी, क्योंकि आज से जब कभी मैं जैकी को धूप में अपने लहराते बालों के साथ खिलखिलाते हुए, बगीचे में तितलियों के पीछे भागते देखूंगी तो उस हंसी के साथ-साथ होगी तुम्हारी भी हंसी, आंखों की उस चमक के पीछे तुम भी अपने परिवार को निहार रहे होगे और बातों की उस चहक के साथ तुम भी हमसे बतिया रहे होगे। क्योंकि बेटे, आज से तुमने उसका जीवन-भर का संरक्षक बन अपने अस्तित्व को जैकी के शरीर में ढाल दिया।

जिन्दगी-भर अपनी जिम्मेवारी को निभाने वाले अपने प्यारे बेटे को मां और सारे परिवार का ढेरों प्यार...।

तुम्हारी मां"

मां की बेटे के नाम चिट्ठी आज भी नेड की कब्र के पत्थर पर खुदी हुई है।

—वन्दना

अग्निशिखा का वार्षिक शुल्क :

एक वर्ष—१८० रु.; तीन वर्ष—५२० रु.; पांच वर्ष—८६० रु.।

पत्रिका हर महीने की ४ तारीख को प्रेषित की जाती है।

पूर्णयोग में पूरे ब्योरे के साथ सम्पूर्ण जीवन का रूपान्तर करना होगा, उसे दिव्य बनाना होगा। यहां कोई चीज नगण्य या तुच्छ नहीं है।—श्रीमां

DEORAH SEVA NIDHI

Charitable Trust Dedicated to Service

(Founder trustee: Late Shri S. L. Deorah)

25, Ballygunge Park, Kolkata - 700 019

उनकी कृपा का स्पर्श कठिनाई को सुयोग में, विफलता को सफलता में और दुर्बलता को अविचल बल में परिणत कर देता है। भगवती माँ की कृपा परमेश्वर की अनुमति है, आज हो या कल, उसका फल निश्चित है, पूर्वनिर्दिष्ट अवश्यंभावी और अनिवार्य है ।

– श्रीअरविन्द

अमरनाथ शिक्षण संस्थान, मथुरा (उ.प्र.)

फोन– 0565–3240006, 9358340375

Website : anvaschool.org, Email-amarnath.mtr1@rediffmail.com

Date of Publication: **1st October 2015**
Rs. 15.00 (Monthly) Registered: SSP/PY/47/2015-2017
RNI No.18135/70 WPP No.TN/PMG/(CCR)/WPP-472/15-17